स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर ।
भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।। किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।।

वर्ष १७ | गौराब्द ४८५, मास—केशव १५, वार—अनिरुद्ध
बुधवार, ३० कार्त्तिक, सम्वत् २०२८, १७ नवम्बर १९७१ | संख्या ५-६

अक्टूबर-नवम्बर १९७१

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीधरणीदेवीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।५९।२५-३१)

नमस्ते देवदेवेश शंखचक्रगदाधर ।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते ।।२५।।

नरकासुर-वधके अनन्तर पृथिवी-देवी इस प्रकारसे भगवान् श्रीकृष्णका स्तव करने लगीं—हे देवदेवेश ! शंख-चक्र-गदा धारण करनेवाले ! हे परमात्मन् ! हे देव ! आप भक्तोंकी इच्छानुसार अपना रूप प्रकट करते हैं । मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।।२५।।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजांघ्रये ।।२६।।

आप पद्मनाभ तथा सत्कीर्त्तिरूप पङ्कज मालाद्वारा भूषित हैं । आप पङ्कजकी तरह सुप्रसन्न और सन्तापविनाशक नेत्रद्वयविशिष्ट हैं । ऐसे आपको मैं प्रणाम करती हूँ ।।२६।।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ।
पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

हे भगवन् ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे पुरुष ! हे आदिबीज ! हे पूर्णबोध ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥२७॥

अजाय जनयित्रऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥२८॥

हे उत्कृष्ट (उन्नत योनिगत) एवं अपकृष्ट (नीच योनिगत) जीवोंके परमात्मन् ! हे भूतात्मन् ! आप अज होकर भी जगतके जनक या पिता हैं । आप अनन्तशक्ति ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूं ॥२८॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो नमो निरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥२९॥

हे प्रभो ! आप जगत् सृष्टिकी इच्छासे उत्कट अर्थात् कार्योन्मुखकी सृष्टि करते हैं, जगतके नाशके लिए तमोगुण एवं जगतकी स्थितिके लिए सत्त्वगुण धारण कर भी स्वयं उनकेद्वारा आवृत न होकर ही आप अवस्थान करते हैं। आप ही काल, प्रकृति एवं पुरुष हैं ॥२९॥

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

हे भगवन् ! मैं (पृथिवी), जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—ये पंच-महाभूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये पंच-तन्मात्राएँ, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवगण, मन, इन्द्रियसमूह, अहंकार एवं महतत्त्व आदिके एकत्रीभूत निखिल चराचर अद्वितीय-स्वरूप आपमें ही अवस्थित है। इन सभी पदार्थोंमें स्वतन्त्र वस्तुत्वकी प्रतीति भ्रमात्मक है ॥३०॥

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत् पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥३१॥

हे शरणागत दुःख-विनाशन ! नरकासुरका पुत्र भीत होनेके कारण मैंने उसे आपके पादपद्मोंके समीप उपस्थित किया है । अतएव आप इसकी रक्षा करें एवं इसके मस्तकपर सर्वपाप-विनाशकारी अपना करकमल अर्पण कीजिये ॥३१॥

॥ इति श्रीधरणीदेवीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
॥ इति श्रीधरणीदेवीकृत श्रीकृष्णस्तोत्र सम्पूर्ण ॥

तोषणीकी कथा

अशेष-क्लेशविश्लेषि-परेशावेश-साधिनी ।
जीयादेष परा पत्री सर्वसज्जन-तोषणी ॥

(ठाकुर श्रीभक्तिविनोदकृत सज्जनतोषणी-वन्दना)

अर्थात् जो अशेष क्लेशोंका नाश करने-वाली एवं परमेश्वरके प्रति प्रेम उत्पन्न कराने-वाली हैं, ऐसी परा वाणीरूपा सर्व-सज्जन-तोषणी जययुक्त हों ।

जिन्होंने सज्जनोंके सन्तोष-विधानार्थ सज्जनतोषणीका आविर्भाव कराया है, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ।

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥
(चै० च०म० १९।५३)

अर्थात् महावदान्य, कृष्णप्रेमदाता, कृष्ण-स्वरूप, कृष्णचैतन्य नामयुक्त, गौराङ्गरूपधारी प्रभु ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्दनामिने ।
गौर-शक्तिस्वरूपाय रूपानुरागवराय ते ॥

(श्रील प्रभुपादजीकृत श्रील भक्तिविनोद वन्दना)

'सज्जन' कहनेसे अन्याभिलाषी, कर्मी, ज्ञानी और शैथिल्यवादी लोग अपने अपने विचारानुकूल्यके अनुसार अर्थ करेंगे । किन्तु उस अर्थमें सम्पूर्णताका अभाव रहेगा । 'सज्जन' शब्द द्वारा भगवान् और भगवद्-भक्तोंको ही समझा जाता है । अर्थात् जो वस्तु नित्य-सेव्य-सेवक भावरूप अनुभूतियुक्त होकर आनन्दमय भक्ति धर्ममें नित्य अव-स्थित है एवं जिस वस्तुमें कुण्ठताके कारण अवस्थान्तर देखा नहीं जाता, वही सद्वस्तु है । सज्जन वस्तु वैकुण्ठ होनेके कारण उनके प्रति मायाका कोई अधिकार नहीं है ।

'सज्जनतोषणी' महाप्रभुकी अपनी वस्तु है । इसलिए प्रपञ्चमें प्रकटित होनेसे ही ये प्राकृत-विषयवाहिनी पत्रिका नहीं हैं । विषयी लोग विषय समझकर इस अप्राकृत-सन्देश दूतीका आवाहन नहीं करेंगे । इनके अप्राकृत स्वरूपका परिचय प्राप्त करने से ही उनके अपने अपने निर्मल शुद्ध स्वरूप को सच्चिदा-नन्द विग्रह रसमय भगवानके नित्य उपादानके अन्यतमके रूपमें उपलब्धि कर सकेंगे ।

सज्जनतोषणी रूपानुग-स्वरूपिणी हैं । प्राकृत विचारसे सज्जन कहे जानेवाले सम्प्र-दायके व्यक्ति अप्राकृत कल्याण प्राप्त करने पर वे भी तोषणीके शुद्ध, निरपेक्ष, मंगलप्रद, निर्मत्सर और सब प्रकारकी कपटता वर्जित साधुजनोंके परम धर्मको जान सकेंगे । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः गुणोंके साथ सज्जनों को कोई सम्बन्ध

की आवश्यकता नहीं है। इसलिए तोषणी कदापि इनका संग नहीं करतीं या किसीको भी इस प्रकारका संग प्रदान नहीं करतीं।

भगवानको प्राप्त करनेके लिए भक्ति-पंथ ही सब प्रकारसे प्रशस्त है—भक्ति-पथके प्रारम्भमें दो विभाग देखे जाते हैं। एक तो विचार-प्रधान और दूसरा रुचि-प्रधान। दोनोंका ही उद्देश्य एक ही है। जिनकी अप्राकृत-वस्तुमें प्रथमावस्थामें रुचि देखी नहीं जाती, उन्हें भक्तिमार्गमें प्रवेश करनेके लिए बहुत-सी बाधाओंका अतिक्रमण करना पड़ता है। वे बाधाएँ अविचारसे या सम्बन्ध-ज्ञानके अभावसे उत्पन्न हैं। यदि स्वभवतः किसी महापुरुषमें सम्बन्ध-ज्ञान देखा जाय, तो अपनी रुचिके माध्यमसे भजनीय कृष्णानुशीलनको जानकर दूसरेको विचार-प्रधान मार्ग भी दिखला सकते हैं। जो स्वयं नित्य-सिद्ध एवं भगवत्पार्षद हैं, महाप्रेम-मय होकर जीवोंके कल्याणके लिए श्रीरूपानुग भक्ति-मार्गके आचार्यस्वरूप श्रीजीव गोस्वामी नामसे गौर-संसारमें उदित हुए थे, उनके श्रीचरणकमलोंमें अपराध-वृत्ति किसी श्रीरूपानुग मार्गके पथिकके हृदयको स्पर्श न करें। श्रीजीव गोस्वामीजीकी अपार करुणाके बलसे ही आज श्रीमन्महाप्रभु प्रचारित कृष्ण-प्रेम स्वरूप श्रीरूपानुग-भक्ति-धर्म जगतके सभी जीवोंका अनन्त कल्याण विधान कर रहे हैं। श्रीजीव गोस्वामीने बंगला भाषामें कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। उनके विरचित 'सन्दर्भ' नामक ग्रन्थसे ही रूपानुग पूज्यपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचरितामृत ग्रन्थमें कुछ सिद्धान्तोंका उद्धार कर भक्ति धर्ममें शिक्षित व्यक्तियोंका आनन्द बढ़ाया है। श्रीरूपानुग वैष्णवोंके मूल-गुरु श्रीपाद श्रीजीव गोस्वामी एवं श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी प्रभृतय हैं। रुचि-प्रधान मार्गके आचार्यस्वरूप होकर प्रभुवर रघुनाथदास गोस्वामीने भजन-मार्गके सुगम-पथमें सुकृति-सम्पन्न जीवोंको आकर्षित किया है। कुछ भाग्यहीन व्यक्ति श्रील रघुनाथदास गोस्वामीके आनुगत्यको समझनेमें असमर्थ होकर रूपानुग-आचार्य श्रील जीव गोस्वामी के प्रति अयथा आक्रमण करनेमें कोई कसर बाकी नहीं रखते। सज्जनतोषणीका कहना है कि जहाँ आचार्यके प्रति गौरव का ह्रास देखा जाय, वहाँ यथार्थ रूपमें रुचि-प्रधान-मार्गजीवी वैसे पथिक भी विपथगामी हैं। रुचि-प्रधान-मार्गमें अवस्थित समझकर, कोई अर्वाचीन, दिग्विजयी पण्डितके प्रति श्रीजीव गोस्वामीपादके व्यवहारको लेकर यदि कोई कहे कि आचार्यपाद श्रीजीवका वैसा व्यवहार श्रीरूप गोस्वामीपाद द्वारा अनुमोदित नहीं था, तो गुर्वपराधी अपराधी हो पड़ेंगे। अजातरुचि व्यक्तियोंके मंगल के लिए कृपामय रसिकशेखर अप्राकृत श्रीजीव गोस्वामीपादने इस वैध-मार्गीय व्यवहारद्वारा सम्प्रदाय-वैभवका सरक्षण किया है एवं अपने गुरुदेवके अप्राकृत महत्वके अधिष्ठानमें किसीका सदेह न हो, इसके लिए यह आचरण दिखलाया है। रूपानुग शुद्ध अन्तरङ्ग भक्तोंमें से कोई भी प्राकृत-सहजिया लोगोंकी तरह श्रील जीव गोस्वामीपादके प्रतिगुरुबुद्धिव्यतीत दूसरे वैध-भक्त या साधारण मर्त्यबुद्धि नहीं करते। रागानुग वैष्णवोंका भी कहना है कि आचार्य गुरुका दोष देखना नहीं चाहिए और उनकी अवमानना करना अनुचित है।

रुचि-प्रधान मार्गमें शास्त्रार्थमें विश्वास, गुरु-पादाश्रय, भजन-क्रिया आदि क्रम-पद्धतिका अनादर नहीं हुआ है। जिस स्थलमें क्रम-पद्धतिका अनादर है, उस स्थलमें रुचि-प्रधान-मार्गमें चलनेवाले पथिकोंकी स्वार्थ-परता उन्हें भक्ति-पथसे विच्युत कर पथ-भ्रान्ति उत्पन्न करा देती है। वर्त्तमान समय-में अनेक स्थलोंमें यह देखा जाता है कि बहुतसे व्यक्ति अपनेको जातरुचि अभिमान कर श्रीजीव गोस्वामीजीके गुरुत्वके प्रति शैथिल्य प्रदर्शन करते हैं। कोई तो स्वकीय-पारकीय आदि विचार उत्थापन कर श्रीजीव गोस्वामीपादके चरणोंमें अपराधी हो पड़ते हैं। सज्जनतोषणी ऐसी गुरु-अवज्ञा के लिए प्रश्रय नहीं देतीं। जिस स्थलमें वैष्ण-वाभिमानीमें जातरति-धर्म यथार्थतः उदित नहीं हुआ है, उस स्थलमें रूपानुग-क्रम-धर्मका विपर्यय अवश्य ही देखा जायगा। भक्ति को ज्ञान-कर्म आदि द्वारा अनावृत है, ऐसा सुनकर अनेक अभक्तोंके हृदयमें वृथा अनर्थक वितण्डा आकर उन्हें भक्ति-धर्ममें प्रवेश करनेमें बाधा प्रदान करती है। दूसरी ओर इस बातकी जिस प्रकारसे प्राकृत सहजिया लोग व्याख्या करते हैं, उसके द्वारा अभक्त व्यक्ति भक्तिका स्वरूप उपलब्धि करनेसे तो दूर रहे, उल्टे वे लोग मानव समाजके अत्यन्त निम्न-स्तरके पापी, मूढ़ सिद्धान्त-विरोधी प्राकृत सहजियाओंको अधिक सम्मान प्रदान करते हैं। शास्त्रीय सिद्धान्तके अना-दर करने का उपदेश ही जातरुचि व्यक्तियों की वृत्ति है, ऐसी बात कदापि नहीं हो सकती। सिद्धान्तके अनुकूलमें ही उनकी रुचि है, इसलिए वे लोग जातरुचि हैं। सिद्धान्त-विरोधी रुचि कदापि कृष्णप्रेमरस प्राप्तिमें सहायक नहीं होती। श्रीपाद विश्वनाथ चक्रवत्ती ठाकुरके "तदश्मसारं" (भा० २।३। २४) श्लोककी टीका पाठ करके भी प्राकृत सहजिया लोग अपनी अपनी प्राकृत चतुरता के वशीभूत होकर अपनी अपनी मूढ़ता समझ नहीं पाते—यही आश्चर्य का विषय है।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(इष्टगोष्ठी)

१–इष्टगोष्ठी-सभा किसे कहते हैं ?

"शुद्धभक्तसंगके विना इष्टगोष्ठी नहीं होती। इष्ट-शब्दसे अभिलषित विषय एवं 'गोष्ठी' शब्दसे सभा समझनी चाहिए। ये दोनों शब्द मिलकर शुद्ध भक्ति-परायण साधुओंकी सभाको 'इष्टगोष्ठी' के नामसे पुकारा जाता है।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज',स०तो० १०।१२

२–भागवत लोगोंकी इष्टगोष्ठी कितने प्रकार की है ?

"इष्टगोष्ठी दो प्रकारकी हैं –आचार और प्रचार। आचार-पालनमें वे लोग (भजनपरायण वैष्णव लोग) श्रीभागवतादिका पाठ और श्रवण तथा हरिनाम-कीर्त्तनमें लगे रहते हैं। प्रचार-समयमें भागवत-तत्व, जीव रसतत्व ओर नाम-महिमा आदिका अधिकारी भेदसे उपदेश प्रदान करते हैं।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स० तो० १०।१२

३–कृष्णकथा-गोष्ठी किसे कहते हैं ?

"दो व्यक्ति मिलकर जो गोष्ठी करते हैं, उसे ही कृष्णकथा-गोष्ठी कहते हैं।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स० तो० १०।११

४–'साधारण व्यक्तियोंके साथ आलाप तथा इष्टगोष्टीमें क्या पार्थक्य है ?

"साधारण लोगोंके साथ रसालापमें सुख होना तो दूर रहे, अत्यन्त रसभंग होता है। इष्टगोष्ठीमें वैसा रसभंग नहीं होता।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स० तो० १०।११

५–शुद्ध भक्त-सम्मेलन अत्यन्त दुर्लभ क्यों है ?

"शुद्धभक्त जगतमें विरल हैं। अतएव उनके मिलनरूप इष्टगोष्ठीमें दो-चार व्यक्तिको छोड़कर एक स्थानमें अधिक व्यक्ति पाये नहीं जाते।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स० तो० १०।११

६–श्रीमद्गौराङ्ग-समाजके विभिन्न स्तर क्या क्या हैं ?

"जिस स्थलमें सभी प्रकारके लोगोंका अधिक समागम है, उस स्थलमें गौराङ्गकी सामाजिक सभा होती है। जहाँ केवल भक्तोंका समागम होता है, वहाँ पर वैष्णव-समाज या वैष्णवोंकी इष्टगोष्ठी होती है। जहाँ पर दो शुद्धभक्तों का मिलन हो, वहाँ पर कृष्णकथा-गोष्ठी होती है। जहाँ पर एक शुद्धभक्तका अवस्थान हो, वहाँ पर केवल नामादि निर्जन-भजन होता है।"

–'श्रीमद्गौराङ्ग-समाज', स० तो० १०।११

– जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

परमाराध्यतम पतितपावन श्रील आचार्यदेवकी तृतीय विरह-तिथि पर—

❋ पुष्पांजलि ❋

जय केशव ! कलकीर्ति पुञ्ज के अतुल सुधाकर ।
अमित ज्ञान-प्रज्ञान महोदधि बुद्धि विभाकर ।।
शुद्ध सत्वमय रूप सदा सुन्दर अविकारी ।
जगती तल पै प्रगट भये तुम मंगलकारी ।।

प्रगट होय अज्ञान तिमिर को पुञ्ज विनास्यौ ।
अहो दिवाकर स्वजन चित्त कौ कमल विकास्यौ ।।
भक्ति-भावनापूर्ण स्वच्छ अनुराग विलास्यौ ।
अद्भुत राधा-कृष्ण-तत्व को मरम प्रकास्यौ ।।

जद्यपि हमसौं विलग भए हौ करुणासागर ।
छाँड़ि गए उपदेश प्रेरणा भरचौ उजागर ।।
इस जीवन कौ एकमात्र आधार वही है ।
करै जीव हरि-भक्ति आपने सही कही है ।।

हरि-लीला रसमत्त रुचिर रसिकन की रति है ।
रसिक स्याम के बिना जीव की कहूँ न गति है ।
असरण सरण सरूप तिहारी ये ही सिच्छा ।
निश्चय ही करि रही हमारी पूरण इच्छा ।।

श्रीगुरु-कृपालेश-प्रार्थी—
अच्युतगोविन्द दासाधिकारी
बी. ए., साहित्यरत्न
[ओ३म्प्रकाश ब्रजवासी]
जयपुर (राज०)

सन्दर्भ-सार

(भक्तिसन्दर्भ-१५)

जब शिवानुचर नन्दीने दक्षयज्ञमें कर्मकाण्डी ब्राह्मणोंको शाप दिया, तब महर्षि भृगुजीने भी शिवानुचरोंको लक्ष्य कर यह शाप दिया—

भवव्रताः ये च ये च तान् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥

(भा० ४।२।२८)

जो लोग भवव्रतधारी (शिवोपासक) हैं अथवा उनके अनुगामी होंगे, वे लोग सच्छास्त्र पञ्चरात्रादिके प्रतिकूल आचरणकारी होनेके कारण 'पाषण्डी' कहलायेंगे।

स्वयं शिवजीने हरिवंश-पुराणमें कहा है—

हरिरेव सदा ध्येयो भवद्भिः सत्त्वसंस्थितैः ।
विष्णुमंत्रं सदा विप्रा पठध्वं ध्यात केशवम् ॥

हे विप्रों ! केवल श्रीहरि ही सात्त्विक-गुणान्वित आप लोगोंके नित्य ध्येय हैं। अतएव आप लोग सर्वदा ही विष्णुमंत्रका जप करें एवं केशवका ध्यान कर।

वैष्णव शास्त्रादियोंमें विष्णुके बहिरङ्ग आवरण-सेवकरूपमें अप्राकृत अन्यान्य देवताओंकी पूजाका विधान है। विष्णुकी प्रीतिके लिए यज्ञानुष्ठानादिमें भगवान्‌के लोककी प्राप्तिके उद्देश्यसे या वैसी लीलाके उपयोगी नरलीलाकारी पार्षदगणोंकी एवं अन्यान्य देवताओंकी भी भगवद् विभूतिरूपसे पूजाका विधान है। दृष्टान्तके लिए—

ततः सम्पूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ।
भवं प्रजापतीन् देवान् प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥

(भा० ७।१०।२६)

भगवान् श्रीनृसिंहदेवके अन्तर्धान होनेके पश्चात् प्रह्लादजीने भगवत्कलास्वरूप ब्रह्मा, शिव, प्रजापति एवं अन्यान्य देवताओंकी पूजा कर मस्तकसे उनका अभिवादन किया।

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः ।
यक्ष्ये विभूतिर्भवतस्तत् सम्पादय नः प्रभो ।

(भा० १०।७२।३)

हे गोविंद ! मैं यज्ञश्रेष्ठ राजसूय यज्ञद्वारा आपकी पवित्र (लोकशोधक) विभूतियों (अंशों) का यजन करूँगा। हे प्रभो ! आप कृपा कर हमारा यह यज्ञ सम्पादन करें।

वैष्णव लोग ही सर्वश्रेष्ठ हैं। स्कन्दपुराणमें ब्रह्मा-नारद-संवादमें एवं उसी पुराणमें प्रह्लादसंहितामें भी कहा गया है—

न सौरो न च शैवो वा न ब्राह्मणो न च शक्तिकः ।
न चान्यदेवताभक्तो भवेद् भागवतोपमः ॥

अर्थात् सौर ही हो, शैव ही हो, ब्रह्माके उपासक ही हो, शाक्त ही हो, या अन्य देवताओंके उपासक ही क्यों न हों, ये लोग कोई भी भगवद् भक्तके समान नहीं हो सकते।

अतएव विष्णुको छोड़कर अन्यान्य देवताओंकी उनके 'तदीय' ज्ञानसे उपासना करनेसे कोई दोष नहीं होता। किन्तु स्वतन्त्र

रूपसे अन्य देवोपासना श्रीभगवद्गीतामें भी निषिद्ध हुई है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
न तु मां अभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥
यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥
(गीता० ९।२३-२५)

हे कौन्तेय ! श्रद्धायुक्त होकर जो लोग अन्यान्य देवताओंका भजन करते हैं, वे लोग अविधिपूर्वक मेरा ही भजन करते हैं। मैं ही (इन्द्रादिरूपसे) समस्त यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु अर्थात् फलदाता हूँ। ऐसे मुझे न जानकर दूसरे देवताओंके उपासक लोग स्वस्थान च्युत होते हैं अर्थात् संसारमें लौटकर आते हैं। इन्द्रादि देवताओंके व्रत करनेवाले व्यक्ति उन-उन देवताओंको प्राप्त करते हैं पितृपूजा (श्राद्धादिद्वारा तर्पणादि) करनेवाले व्यक्ति पितृ लोकको ही प्राप्त करते हैं। यक्ष, राक्षस, विनायकादि भूतपूजक लोग उन उन भूतगणोंको ही प्राप्त करते हैं। किन्तु मेरे पूजक लोग मुझे ही प्राप्त करते हैं।

अतएव विष्णुको छोड़कर अन्याय देवताओंकी 'तदीय' मानकर पूजा कहीं कहीं गुणके रूपमें गृहीत हुआ है। किन्तु उनकी अवज्ञा करना सर्वदा अनुचित है—

हरिरेव सदाराध्यः सर्वदेवेश्वरेश्वरः ।
इतरे ब्रह्मरुद्राद्या नावज्ञेयाः कदाचन ॥
(पद्मपुराण)

सर्वदेवेश्वर होनेके कारण श्रीहरि ही सदा आराध्य हैं, किन्तु दूसरे देवता लोगों (ब्रह्मरुद्रादियों) की कदापि अवज्ञा नहीं करनी चाहिए।

विष्णुधर्ममें ऐसा उपाख्यान वर्णित है—

पूर्वकालमें श्रीअम्बरीष महाराजने बहुत काल तक भगवान्की आराधनारूप तपस्या की थी। एकबार भगवान् इन्द्ररूप धारण कर एवं गरुड़को ऐरावत रूप धारण कराकर स्वयं उसके ऊपर आरोहण कर अम्बरीषको वरद्वारा प्रलोभित करने लगे। अम्बरीषने इन्द्ररूप देखकर उनका नमस्कार करते हुए अभिनन्दन किया। किन्तु कोई वरकी प्रार्थना न की। उन्होंने कहा—"जो आराध्य प्रभु हैं वे ही मुझे वर देंगे, मेरे और कोई वरदाता नहीं हैं।" यह सुनकर इन्द्ररूप भगवान् ने कहा—"तुम्हारे आराध्य पभुका प्रदेय वर मैं ही प्रदान करूँगा।" तथापि अम्बरीष ने कोई वर नहीं चाहा। उन इन्द्ररूपी भगवान्ने उन्हें भय दिखानेके लिए वज्र उठाया। फिर भी अम्बरीषने वर ग्रहण नहीं किया। तब भगवान् उनके प्रति प्रसन्न होकर इन्द्ररूप दूर कर अपना स्वरूप प्रकट करते हुए उनपर अनुग्रह किया।

शिव की अवज्ञासे महान् दोष होता है। स्वयं भगवान्ने यह बात कही है—

यो मां समर्च्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रित ।
विनिन्दन् देवमीशानं स याति नरकं ध्रुवम् ॥

जो व्यक्ति ऐकान्तिकी भक्ति आश्रय करके भी महादेवकी निन्दा कर मेरी अर्चना करें, तो वह निश्चय ही नरकमें जायगा। श्रीकपिलदेवने महान् वैष्णवोंकी अवज्ञा करने की बात दूर रहे, साधारण प्राणियोंके अपमान कार्यकी भी निन्दा की है—

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥
(भा० ३।२९।२१)

जो व्यक्ति सर्वभूतमें अवस्थित मुझ परमात्माकी मूढ़ताके कारण अवज्ञा कर लौकिकी रीतिमें प्राकृत बुद्धिके अनुसार मेरी अर्चना-पूजा करता है, वह केवलमात्र भस्ममें घृतकी आहुति प्रदान करता है। यह प्रतिमा प्रस्तरमयी है, यह काष्ठमयी है इत्यादि रूप मूढ़-बुद्धिके कारण जो व्यक्ति सर्वभूतमें वर्तमान मुझ परमात्माके साथ अर्चा-मूर्तिकी ऐक्य-बुद्धि न कर प्रतिमाकी पूजा करता है, उस मूढ़ व्यक्तिका सर्वभूतोंमें मेरा दर्शन न होने के कारण भूतावज्ञारूपा दोष होता है। इसलिए जिस प्रकार राखमें घीका होम करनेसे वृथा परिश्रम होता है, उसी प्रकार विष्णु-वैष्णवोंमें श्रद्धाहीन व्यक्तिको फल प्राप्त नहीं होता। इसलिए श्रीकपिलदेव पुनः कहते हैं-

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥

परदेहमें अन्तर्यामी और आश्रयरूपसे अवस्थित मुझे न जानकर दूसरेके प्रति विद्वेषकारी, देहमें आत्माभिमानी एवं प्राणियोंके प्रति शत्रुता भावापन्न व्यक्ति का मन कदापि शान्ति नहीं प्राप्त करता।

महाभारतमें भी ऐसा कहा गया है—

पितेव पुत्रं करुणो नोद्वेजयति यो जनम् ।
विशुद्धस्य हृषीकेशस्तस्य तूर्णं प्रसीदति ॥

कृपालु पिता जिस प्रकार पुत्रका उत्पीड़न नहीं करते, उसी प्रकार जो व्यक्ति दूसरोंको उद्वेग नहीं देते, उनके प्रति भगवान अति शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं।

जब तक साधक लोग सर्वभूतोंमें अवस्थित भगवानको नहीं जान पाते, तब तक उन्हें भगवत्-श्रीविग्रहकी अर्चा करनी चाहिए—

अर्चादौ अर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत् ।
यावन्न वेद स्व-हृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥
(भा० ३।२९।२०)

फिर स्वधर्म पालनपूर्वक अर्चन करनेपर भी प्राणियोंके प्रति दया न करनेसे अर्चन सिद्ध नहीं होता।

आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥
(भा० ३।२९।२६)

जो व्यक्ति अपनेमें एवं दूसरेमें थोड़ा भी भेद देखता है, मृत्युस्वरूप मैं उस भेद-दर्शीको अत्यन्त भयंकर भय प्रदर्शन करता हूँ। अतएव मित्रभावसे अभेद-दर्शनपूर्वक समस्त भूतोंमें अवस्थित भगवानकी दानमानादिके द्वारा पूजा करनी चाहिए।

भगवत्विषयक ज्ञान प्राप्त होने पर जातश्रद्ध व्यक्ति कर्मनिष्ठासक्ति-परायण होकर भजन नहीं करेंगे। परन्तु केवल शुद्ध-भक्ति-द्वारा पूजा करेंगे। शुद्धार्चनकारी व्यक्ति अर्चा-विग्रहका परित्याग न करेंगे।

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ।
ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥
तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः ।
तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥
रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ।
तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ।
ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥
अर्थज्ञात् संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वधर्मकृत् ॥
मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः ॥

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः ।
मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ।
न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥
(भा० ३।२९।२८-३३)

अचेतन पदार्थकी अपेक्षा सचेतन पदार्थ श्रेष्ठ है, उसकी अपेक्षा श्वासादि-क्रियाशील प्राणवृत्तिमान जंगम पदार्थ श्रेष्ठ है। उसकी अपेक्षा ज्ञानवान श्रेष्ठ है। उसकी अपेक्षा इन्द्रियवृत्तिविशिष्ट वृक्षादि श्रेष्ठ हैं। स्पर्श (त्वगिन्द्रिय) द्वारा अनुभवशील वृक्षादि अपेक्षा जिह्वेन्द्रिय द्वारा अनुभवशील मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा नासिकेन्द्रिय द्वारा अनुभवशील भ्रमरादि श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा कर्ण द्वारा अनुभवशील सर्पादि श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा रूपभेदवित् काकादि श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा दोनोंओर दाँतविशिष्ट जीव श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा बहुतसे पदवाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनकी अपेक्षा चारपदवाले जीव एवं चार पदवाले प्राणियोंकी अपेक्षा दो पदवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्योंमें ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें केवल की अपेक्षा वेदार्थवित्, उनकी अपेक्षा संशयच्छेत्ता, उनकी अपेक्षा स्वधर्मके अनुष्ठान करनेवाले श्रेष्ठ हैं। उनकी अपेक्षा निष्काम ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, ज्ञानी अपेक्षा भी मुझमें कायमनोवाक्य-सर्मर्पणकारी भक्त ही श्रेष्ठ हैं। मुझमें सर्वस्व समर्पणकारी और सर्वभूतोंमें समदर्शी भक्त अपेक्षा श्रेष्ठ कोई नहीं है।

अन्य जीवोंके प्रति भी योग्यतानुसार यथाशक्ति आदर करना चाहिए। इस विषय में श्रीकपिलदेव कहते हैं—

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद् बहुमानयन् ।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥
(भा० ३।२९।३४)

भगवान विष्णु ही अन्तर्यामीरूपसे जीव हृदयमें प्रविष्ट हैं,यह जानकर सभी प्राणियोंको ही मन-ही मन-बहुत सम्मान करते हुए प्रणाम करना चाहिए। 'जीवकलया' अर्थमें उस उस जीवहृदयका परिदर्शन करते हुए अन्तर्यामी रूपसे। इस प्रकार प्रथमोपासक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें ही सर्वभूतोंके प्रति आदर विहित है। किन्तु श्रद्धावान साधक लोगोंकी सर्वत्र भगवद्वैभव-स्फूर्ति विद्यमान है। अतएव सर्वभूतादर स्वभावतः ही उनमें रहता है। जातरति व्यक्तियोंमें अहिंसा और वैराग्य स्वभावतः ही वर्त्तमान है।

यशानुरक्ताः सहसैव धीरा
व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं
यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥
(भा० १।१८।२२)

बुद्धिमान व्यक्ति लोग जब भगवानमें अनुरक्त होकर सहसा देहाभिमान परित्याग कर साधनकी पराकाष्ठारूप परमहंसावस्था प्राप्त करते हैं, तब अहिंसा और उपशम-निवृत्ति ही उनके स्वाभाविक धर्म हो पड़ते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

महाभागवतवर वृत्रासुर

जिस वाणीके द्वारा परम प्रेमास्पद श्यामसुन्दरका तथा उनके प्रिय भक्तोंका गुणगान-कीर्त्तन किया जाता है, वही वाणी सारवती एवं सार्थक है; अन्यथा वह निस्सार और निरर्थक है।

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदुहैव मंगलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ॥

(भा० १२।१२।४८, ४९)

जिस वाणी द्वारा घट-घटके वासी अविनाशी भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिका कीर्त्तन नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होने पर भी निरर्थक एवं सारहीन है। सुन्दर होने पर भी असुन्दर है। उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत् स्वरूपा है। जो वाणी और वचन भगवान्‌के गुणोंसे परिपूर्ण होते हैं, वे ही परमपावन, मंगलमय एवं परम सत्य हैं। जिन वचनोंके द्वारा भगवान् के परम पवित्र यशका गान हो, वे ही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नये नये जान पड़ते हैं। उनसे अनन्त काल तक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक चाहे वह समुद्रतुल्य अगाध एवं असीम क्यों न हो, उन वचनोंके प्रभावसे सदाके लिए सूख जाता है।

परन्तु कुछ दैनन्दिन भौतिक वातावरणों में आबद्ध रहनेके कारण मानव-स्वभाव ही कुछ ऐसा बन गया है कि वे अपने अमूल्य क्षणोंका उपयोग भगवान्‌के नामोच्चारणमें न कर आहार, निद्रा, मैथुनादिमें ही किया करते हैं—

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा ॥
देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ।
तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥

(भा० २।१।३,४)

उनकी रात्रि निद्रा या स्त्री-प्रसंगमें कटती है और दिन धन-संग्रहकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके भरण-पोषणमें बीतता है। इसप्रकार उनकी समस्त आयु समाप्त हो जाती है। संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि और कुछ नहीं हैं, केवल असत् ही हैं। परन्तु जीव उनके मोहमें पागल-सा हो जाता है, रातदिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी जागता नहीं है। यह इस भौतिकवादिताकी सर्वग्रासी माया-मृग-मरीचिकामें इतना भ्रमित हो गया है एवं असंस्कारित नयी पीढ़ीके समाजकी नयी विचार-परम्परामें इतना उलझ गया है कि उसे अपने नित्य कल्याणके बारेमें कोई चिन्ता ही नहीं है। मनुष्य आत्म-तत्त्वसे दूर हटकर प्राचीन संस्कृतिको भूल चुका है एवं नयी संस्कृतिमें अत्यधिक उत्साहके साथ डूब चुका है। उसे तुच्छ भोगोंमें तीव्र अनुराग है एवं श्रद्धा, विश्वास, त्याग,

तपस्या, पवित्रता, सर्वमंगलप्रदायिनी-दुःखविदारिणी भगवान्‌की भक्तिसे सर्वाधिक विराग है। श्रीकृष्ण-कथाके श्रवण, मुकुन्द नाम-माधुरीके आस्वादन, सौन्दर्याम्बुधि नवनीरद-कान्तिवाले व्रजेन्द्रनन्दनके श्रीविग्रह दर्शनको अनुपयोगी समझता है। चल-चित्रों के पात्र, उनकेद्वारा गान किये गीत--उसके गृहोंकी केवल शोभा बढ़ानेके लिए ही हो, ऐसी बात नहीं; भगवत्-स्मरणकी भाँति अहोरात्र उनका स्मरण, और उनकी चर्चा की जाती है। चित्रोंके दर्शन भगवत्-दर्शनसे भी उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार मानव भयानक भव-रोगमें और भी जकड़ता जा रहा है। ऐसे वातावरणमें सर्वदा रहनेवाले मनुष्योंके लिए भगवद्भक्तों की चर्चा परिहासका विषय या अरण्यरोदन सा बन गया है। परन्तु आज भी सन्त एवं भागवत लोग असाध्य रोगीके लिए वैद्य-से बनकर इस सर्वत्र व्याप्त भवव्याधिके शमनके लिए कृतप्रतिज्ञ हैं। उनकी यह दृढ़ धारणा एवं अनुभूति है कि जिस प्रकार भगवान् भास्कर अपने प्रकाशसे समग्र अन्धकारको दूर कर नव-ज्योति प्रदान कर सभीको नव-जीवन देते हैं, जिस प्रकार भगवती गंगाका पवित्र एवं निर्मल जल बिना किसी भेदभावके अनजाने या जाने सभी व्यक्तियोंको पावन कर देता है, उसी प्रकार यशोदानन्दन श्रीकृष्णकी भक्ति-सरिता और उनके भक्तोंकी पावन-कथा निखिल दोषोंसे परिपूर्ण पतितसे पतित, भ्रान्तसे भ्रान्त व्यक्तिको भी पवित्र करनेमें परम समर्थ है। हृदयके अन्धकारको दूर कर मायिक दोषोंको पूर्णतः दूर कर जीवमात्रका उद्धार कर उन्हें अमूल्य प्रेम-धन प्रदान करती है।

इसी भावनाका अनुसरण करते हुए असुर-कुलोत्पन्न महाभागवत वृत्रासुरका परम पवित्र चरित्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रीमद्भागवत वर्णित "मन्येऽसुरान् भागवतान्" की सूक्तिके अनुसार भागवत लोग कुल, जाति, वर्ण आदिसे अतीत हैं। यह अटल सत्य है कि भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्तिसम्पन्न व्यक्तिके लिए योनिगत, जातिगत या कुलगत भेद कोई महत्व नहीं रखता। वे सभी भगवान्‌के परम प्रियजन हैं। भक्त-चरित्र भगवत्-चरित्रकी ही तरह परम पवित्र एवं संसारासक्तिका परिपूर्ण रूपसे नाश करनेवाला है। वे संसारमें रहते हुए भी लोक दृष्टिसे भोगोंमें आसक्त दीखने पर भी परम भक्त हैं। क्योंकि उन्होंने अपने चित्तको स्थिर कर मुकुन्दके चरणोंमें अनन्य भावसे न्यौछावर कर दिया है। वृत्रासुर भी ऐसे ही परम भागवतोंमें से थे। परम भक्त राजा परीक्षित् वे इनके चरित्रसे आश्चर्यान्वित होकर श्रीशुकदेवजीसे पूछा था—

रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः।
नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः॥
देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम्।
भक्तिर्मुकुन्दचरणे च प्रायेणनोपजायते॥
रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः॥
मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

(भा० ६।१४।१,२,३ ५)

हे महामुने! वृत्रासुर अत्यन्त रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभावसे युक्त था। वह देवताओंको कष्ट पहुँचाकर पाप तो करता ही था। फिर ऐसी परिस्थितिमें भगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी सुदृढ़ भक्ति कैसे

हुई ? प्रायः देखा जाता है कि विशुद्ध सत्त्वगुणमें अधिष्ठित देवता एवं भोगमल रहित निर्मलात्मा ऋषियोंमें भी भगवान् मुकुन्दके चरणोंमें भक्तिका उदय नहीं होता। जगत्में धूलिकणोंके समान असंख्य प्राणी हैं। उनमें से मनुष्य आदि कुछ श्रेष्ठ जीव ही अपने कल्याण की चेष्टा करते हैं। उनमें से भी संसारसे मुक्त होने की इच्छा कम लोग ही रखते हैं। करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी शान्तचित्त महापुरुषका मिलना बहुत ही दुर्लभ है जो कि नारायणके ऐकान्तिक भक्त हों।

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ।
इत्थं दृढ़मतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥
(भा० ६।१४।६)

वृत्रासुर तो सब लोगोंको सताता था एवं बड़ा पापी था। उस भयंकर युद्धके अवसर पर भगवान् श्रीकृष्णमें अपनी वृत्तियोंको इस प्रकार लगाये हुए था, इसका क्या कारण है ? इस विषयमें हमें बहुत अधिक सन्देह है। इसे स्पष्टतः जाननेके लिए कुतूहलता हो रही है। वृत्रासुरका बल-पौरुष कितना महान् था कि उसने रणभूमिमें देवराज इन्द्रको प्रसन्न किया।

परीक्षित् महाराजकी उत्कंठा-पूर्त्ति एवं शंका-निवृत्तिके लिए श्रीशुकदेवजीने लोक-मंगलकारी भगवान् श्रीहरिके चरणोंका स्मरण कर वृत्रासुरका पूर्वेतिहास वर्णन करना प्रारम्भ किया।

प्राचीनकालमें समग्र साधनोंसे सम्पन्न शूरसेन देशमें गुण-गणाढ्य, विद्या, ऐश्वर्य-सम्पन्न, परम भक्त, साधु-सेवी, यौवनसम्पन्न, कुलीन चित्रकेतु नामक सम्राट चक्रवर्त्ती राज्य करते थे। उनके राज्यमें पृथ्वी स्वयं ही प्रजाकी इच्छानुसार अन्नरस दे दिया करती थी। राजा चित्रकेतु की सुन्दरता-परिपूर्णा, उदार-हृदया, यौवन-सम्पन्ना, असंख्यों रानियाँ थीं। किन्तु दैवेच्छासे एक भी सन्तानवती नहीं थी। इस कारण राजा सब समय चिन्तित रहते थे। उन्हें कोई भी भोग-विलास बिलकुल नहीं भाता था। पुत्र-प्राप्ति की प्रबल आकांक्षासे सदा पीड़ित रहते थे।

एक दिन हठात् शाप एवं वरदानमें समर्थ अंगिरा ऋषि राजाके यहाँ आ पहुँचे। राजाने प्रत्युत्थान-अर्घ्यादिके द्वारा ऋषिकी विधिवत् पूजा की। आतिथ्य सत्कारके पश्चात् सुखपूर्वक ऋषिके आसन पर आसीन होने पर राजा शान्त भावसे ऋषिके समीप ही पृथ्वी पर बैठ गये। राजाके स्थिरचित्त होनेपर महर्षिने प्रश्न किया—हे राजन् ! तुम्हारे गुरु, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना, मित्र मण्डल आदि प्रसन्न तो हैं ? क्योंकि प्रजा अपनी रक्षा का भार राजाको सौंपकर ही सुख-समृद्धि प्राप्त करती है। जिस राजाका मन वशमें है, जो भोगोंमें आसक्त नहीं है, अपने स्वार्थसे रहित है, उसका राज्य सर्वसमृद्धिसे युक्त रहता है, लोकपाल उसे भेंट चढ़ाते हैं। जो राजा अपने हितको ही देखता है, धार्मिक नैतिक संस्कारोंसे वर्जित है, जिसकी प्रजा करोंके भारसे पीड़ित है, जिसके राज्यमें अधर्मका साम्राज्य है, सत्यका स्थान जहाँ असत्यने ग्रहण किया है, न्यायकी जहाँ मान्यता नहीं, गौ-ब्राह्मण-सन्तोंका जहाँ आदर नहीं, वह राज्य अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रहता और अनेक

कष्टोंका भागी होता है। राजाके दोषोंसे ही प्रजाको अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। उनका जीवन दूभर हो जाता है। आपके राज्यमें पूर्ण विचार करनेपर भी ऐसी कोई बातें देखने में नहीं आतीं। फिर आप अप्रसन्न क्यों हैं? तुम्हारे मुख पर आन्तरिक चिन्ताके चिह्न क्यों झलक रहे हैं? इसका कारण मैं जानना चाहता हूँ।

राजाने हाथ जोडकर कहा—देव! परम योगी तपस्वी आपके लिए ऐसी कोई बात नहीं है जो अज्ञात हो। फिर भी मेरे मुखसे सुननेकी इच्छा रखते हैं तो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ—

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः।
न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्कामामिवापरे॥
(भा० ६।१४।२५)

मुझे पृथ्वीका साम्राज्य, ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ सभी मिली हुई हैं जिसके लिए लोकपाल भी लालायित रहते हैं। परन्तु सन्तानहीन होनेसे इन सुख-भोगोंसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती जैसे भूखे प्राणीको अन्न-जलके अतिरिक्त दूसरी वस्तुएँ रुचिकर नहीं लगती।

ब्रह्मपुत्र परम कृपालु तेजस्वी ऋषिने राजा की सभी बातोंको सावधानीसे सुना एवं उसकी पुत्र-लालसा देखकर सन्तानके लिए त्वष्टा देवताके योग्य चरु का निर्माण कर उनका यजन किया। अनन्तर यज्ञावशिष्ट प्रसाद सद्गुणवती महारानी कृतद्युतिको प्रदान किया। ऋषिने कहा कि उसे एक पुत्र उत्पन्न होगा जो हर्ष-शोक प्रदान करनेवाला होगा। ऐसा कहकर ऋषि वहाँसे प्रस्थान कर गये। यथासमय महारानी कृतद्युतिने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र की उत्पत्तिके संवादसे चित्रकेतु तो प्रसन्न हुए ही साथ ही साथ समग्र शूरसेन देशके निवासियोंको अपार आनन्द हुआ। राजाने भी मांगलिक स्नानसे पवित्र होकर अपनेको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया। ब्राह्मणोंसे स्वस्ति-वाचन कराकर कर्मादि संस्कार कराया तथा उन्हें स्वर्ण, रजत, वस्त्र, आभूषण, गौएँ आदि प्रदान कीं।

राजा की इस नवजात शिशुपर उसकी बाल-सुलभ चेष्टाओं एवं विविध प्रकार की क्रीड़ाओंको देखकर अवर्णनीय आसक्ति हो गई। वे मोह-ममतामें सब कुछ भूल गये। बालकमें आसक्ति होनेके कारण राजा का स्नेह जितना महारानी कृतद्युतिमें था, उतना और रानियोंमें न रहा। राजाको पुत्र क्या मिला, मानो किसी दरिद्रको भटकते भटकते सम्पत्ति मिल गई थी।

अन्य रानियाँ अपनेको सन्तानहीन तथा राजाद्वारा उपेक्षित देखकर सीतेले डाहसे मन ही मन जलने लगीं और अपने आपको धिक्कार देने लगीं। वे क्रमशः कृतद्युतिके प्रति अत्यन्त द्वेष करने लगीं।

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः।
गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति॥
(भा० ६।१४।४३)

द्वेषके कारण उन रानियोंकी बुद्धि मारी गयी। उनके चित्तमें क्रूरता छा जानेके कारण अपने पति चित्रकेतुका पुत्र स्नेह सहन नहीं हुआ। इसलिए उन्होंने चिढ़कर नन्हें से राजकुमारको विष खिला दिया। कृतिद्युतिको सौतोंके इस घोर पापमयी करतूतका कुछ भी पता नहीं था। उन्होंने

दूरसे देखकर यह समझ लिया कि बालक सुखपूर्वक सो रहा है। वह आनन्दसे इधर उधर अन्तःपुरमें घूमती ही रहीं। अधिक देर हो जानेपर वे अपनी दासीको पुत्र लानेके लिए भेजीं। धायने बालकके समीप जाकर उसके देहकी विकृत अवस्था देखी। उसने जान लिया कि शरीरसे जीवात्मा प्रस्थान कर गया है। वह तत्काल चीखती-चिल्लाती पृथ्वी पर गिर पड़ी और छाती पीटकर बड़े आर्त्तस्वरमें जोर-जोरसे रोना प्रारम्भ किया। रोना सुनकर कृतद्युति बालकके शयन कक्षमें पहुँचीं। उन्होंने अपने लाड़िले बेटे को मृत पाया।

पुत्रकी अवस्था देखकर अत्यन्त शोकके कारण रानी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनके सिरके बाल बिखर गये और शरीरके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। महारानीका रुदन सुनकर रनिवासके सभी स्त्री-पुरुष वहाँ दौड़कर आये और सहानुभूतिके कारण अत्यन्त दुःखी होकर रोने लग गये। वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठमूठ रोनेका अभिनय करने लगीं।

पुत्रको अकारण एवं असमयमें ही मृत्युका ग्रास बना देखकर राजाके आँखोंके सामने अँधेरा छा गया और अत्यन्त स्नेहके कारण वे विह्वल हो पड़े। वे धीरे धीरे अपने मन्त्रियोंके एवं ब्राह्मणोंके साथ मार्गमें गिरते-पड़ते-उठते मृत बालकके निकट पहुँचे और मूर्च्छित होकर उसके पैरोंके पास गिर पड़े। उनके केश और वस्त्र इधर-उधर बिखर गये तथा वे लम्बी लम्बी साँसें लेने लगे। आसुओंकी अधिकतासे उनका गला रुँध गया और वे कुछ भी बोल न सके। सभीने रानीको विलाप करती और अस्त-व्यस्त अवस्थामें पाया। उस समय उनकी अवस्था सभीके लिए करुणोत्पादक थी। महारानीके नेत्रोंसे आँसू बहकर नेत्रोंके अञ्जनसे केसर-चन्दन-चर्चित वक्षस्थलको भिगो रहे थे, बाल बिखरे हुए थे एवं उनमें से गूँथे हुए फूल गिर रहे थे। वे अपने पुत्रके शोकमें कुररी पक्षीके समान उच्च स्वरसे विविध प्रकारके विलाप कर रही थी। तरह-तरहसे विधाता एवं यमराजकी भर्त्सना कर पागलोंकी भाँति पुत्रको उठने-बैठने-भोजन करने-खेलने आदिके लिए कह रही थीं। यह क्रम बहुत देर तक चलता रहा। क्रमशः सभी शोकमग्न होकर क्रन्दन करते रहे। इसी बीचमें भगवान् नारदके साथ महर्षि अंगिराका आगमन हुआ। उन्होंने महलमें मृतपुत्रके समीप चित्रकेतुको शवकी तरह पड़ा हुआ देखकर उनके शोक दूर करनेके हेतु उपदेश देने लगे।

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति।
त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम्॥
(भा० ६।१५।२)

उन्होंने कहा—हे राजेन्द्र! जिस जीवके लिए तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्ममें तुम्हारा कौन था? उसके तुम कौन थे? और अगले जन्ममें तुम्हारा उसके साथ क्या सम्बन्ध रहेगा?

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन बालुकाः।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः॥
(भा० ६।१५।२)

जैसे जलके वेगसे बालुके कण एक दूसरेसे जुड़ते और बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही कालके प्रवाहमें प्राणियोंका भी मिलन और बिछोह होता रहता है।

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च।
एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया॥
(भा० ६।१५।४)

जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं वैसे ही भगवान्‌की मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं।

हम, तुम तथा वर्त्तमान सभी प्राणी अपने जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत्यवस्तु तो सब समय एकसी रहती है। परमेश्वर सब प्राणियोंके अधिपति हैं और उनमें जन्म मृत्युका विकार नहीं है। न उन्हें किसीकी इच्छा है या किसीकी अपेक्षा। वे स्वयं प्राणियों की सृष्टि करते हैं एव उनके द्वारा अन्य प्राणियोंकी सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं। जैसे एक बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही पिताके शरीरसे माताके शरीर द्वारा पुत्रके शरीरकी उत्पत्ति होती है। पिता, माता और पुत्र जीवके रूपमें देही हैं और बाह्य दृष्टिसे केवल शरीर। उनमें देही जीव घट आदि कार्योंमें पृथ्वीके समान नित्य है। यह देही और देहका विभाग अनादि एवं अविद्या द्वारा कल्पित है। अतः शोक करना अनुचित है।

इस प्रकारके ज्ञानोपदेशसे चित्रकेतु बड़े ही प्रभावित हुए। दोनोंका परिचय पूछते हुए कहा—मेरे जैसे विषयासक्त प्राणियोंके उद्धार करनेके लिए आप दोनों महान् ज्ञानी होकर भी अपनेको अवधूतके वेषमें छिपाकर यहाँ पधारे हैं। बहुतसे भगवान्‌के प्यारे ब्रह्मवेत्ता पुरुष लोग मेरे जैसे विषयासक्त प्राणियोंको उपदेश करने के लिए उन्मत्त-सा वेष बनाकर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं।

तस्माद्भवां ग्राम्यपशोर्मम मूढ़धियः प्रभू।
अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम्॥
(भा० ६।१५।१६)

मैं विषय भोगोंमें फँसा मूढ़बुद्धि ग्राम्य पशु हूँ और अज्ञानके घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ। आप लोग मुझे ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाश प्रदान करें।

सर्वप्रथम अंगिराने अपना परिचय देकर महर्षि नारदका भी पूर्ण परिचय दिया और कहने लगे—पुत्र शोकसे ज्ञानान्धकारमें डूब रहे तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करनेके लिए ही यहाँ आये हैं। जो व्यक्ति भगवान् और और ब्राह्मणोंका भक्त है, उसी किसी भी अवस्थामें शोक नहीं करना चाहिए। मैं जिस समय पहले तुम्हारे पास आया था, उसी समय तुम्हें ज्ञानोपदेश करता, पर उस समय तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा थी। अतएव तुम्हें ज्ञान न देकर उस समय मैंने पुत्र प्रदान किया। अब तुम स्वयं यह अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना शोक होता है।

एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः॥
शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः।
महीं राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः।
सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः।
गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः॥
(भा० ६।१५।२१,२२,२३)

इसी तरह स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ शब्द-रूप-रस आदि विषय, राज्यवैभव, पृथ्वी, राज्य, सेना,

कोष, सेवक, मंत्री, सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र सभी के लिए है। क्योंकि ये सभी ही अनित्य पदार्थ हैं। शूरसेन ! अतएव ये सभी शोक, मोह, भय और दुःखके कारण हैं, मनसे कल्पित हैं, एवं गन्धर्वोंकी तरह ये एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं। स्वप्न, माया एवं संकल्पकी तरह ये क्षणस्थायी हैं।

जो व्यक्ति कर्मवासनाओंसे प्रेरित होकर विषयोंका चिन्तन करते हैं, वे ही मनद्वारा अनेक प्रकारके कर्मोंकी सृष्टि करते रहते हैं। जीवात्माका यह देह पञ्च महाभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रियोंका मिलित रूप है। यह जीवको अनेक प्रकारके क्लेश और सन्तापको देनेवाली है। इसलिए तुम अपने मनको विषयोंमें भटकनेसे रोककर शान्त करो एवं उस मनके द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप का विचार करो एवं भगवदितर वस्तुओंमें नित्यत्व बुद्धि परित्याग करो तथा परमशान्तिस्वरूप परमात्मामें स्थित हो जाओ।

फिर नारदजीने कहा—हे महाभाग ! तुम एकाग्रचित्त होकर मुझसे भगवान् संकर्षणका मंत्र ग्रहण करो जिसके स्मरणसे तुम्हें सात रातमें ही भगवान् संकर्षणके दर्शन प्राप्त होंगे।

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे
शर्वादयो भ्रममिमं द्वितय विसृज्य ।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं
प्रापुर्भवानपि परं नचिरादुपैति ॥

(भा० ६।१५।२८)

प्राचीनकालमें भगवान् शंकर आदिने श्रीसंकर्षणदेवके ही चरणकमलोंका आश्रय लिया था। इसीसे उन्होंने द्वैतभ्रमका परित्याग कर दिया था और उनकी उस महिमाको प्राप्त हुए जिससे बढ़कर किसीका होना तो दूर रहा, समान भी नहीं कोई प्राप्त नहीं कर सका। तुम भी बहुत शीघ्र ही भगवान्के उसी परमपदको प्राप्त कर लोगे।

अनन्तर प्रस्थान किए जीवात्माको बुलाकर देवर्षि नारदजीने कहा—ये तुम्हारे माता-पिता, सुहृत्-सम्बन्धी तुम्हारे वियोगमें अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं। इसलिए तुम अपने शरीरमें आ जाओ और शेष आयु अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ व्यतीत करो और पिता द्वारा प्रदत्त भोगोंका भोगो एवं राज्यसिंहासन ग्रहण करो।

तब जीवात्मा शरीरमें प्रवेश कर कहने लगा—देवर्षिजी ! मैं अपने कर्मोंके अनुसार देवता-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियों में न जाने कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमें से ये लोग कितने जन्मोंमें मेरे माता-पिता हुए ? विभिन्न जन्मोंमें सभी एक दूसरेके भाई, बन्धु-नाती, शत्रु-मित्र, उदासीन, मध्यस्थ और द्वेषी होते रहते हैं।

जैसे सुवर्ण आदि क्रय-विक्रय की वस्तुएँ एक व्यापारीसे दूसरे व्यापारीके पास जाती रहती हैं, उसी प्रकार जीव भी विभिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है। मनुष्यकी अपेक्षा अधिक दिन ठहरनेवाली स्वर्ण आदि पदार्थोंका सम्बन्ध भी मनुष्य के साथ स्थायी नहीं, क्षणिक ही होता है। जब तक जिस वस्तु से उसका सम्बन्ध रहता है, तब तक ही उसकी उस वस्तु से ममता रहती है।

एव योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ।
यावद्यत्रपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयःस्वदृक्।
आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभुः ॥
न ह्यस्यार्तिः यः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा।
एकः सर्वधियां द्रष्टाकर्तृणां गुणदोषयोः ॥
(भा० ६।१६।८-१०)

जीव नित्य और अहंकाररहित है। वह गर्भमें आकर जब तक जिस शरीरमें रहता है, तभी तक उस शरीरको अपना समझता है। यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म (जन्मादि-रहित), सबका आश्रय अर्थात् उत्पत्ति या जन्मशील देहादिका आश्रय है (स्वयं ही देहादि नहीं है) और स्वतः प्रकाश स्वरूप एवं प्रभु या समर्थवान् होकर भी अपने मायागुणसे अपनेको नानारूपसे सृष्टि करता रहता है। इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न कोई अप्रिय। इसका न तो कोई अपना है और न कोई पराया। क्योंकि गुणदोष (हिताहित) करनेवाले मित्र-शत्रु आदि की भिन्न-भिन्न बुद्धिवृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है। वास्तवमें यह अद्वितीय है।

इस प्रकार वह जीवात्मा ज्ञान-परिपूर्ण वार्ता कहकर उस शरीरसे चला गया। इस वार्ताको सुनकर सब पारिवारिक जनोंका स्नेह-बन्धन कट गया और सबके हृदयसे बालकका मृत्युजनित शोक दूर हो गया। इसके पश्चात् बालककी और्ध्वदैहिक क्रियाएँ पूर्ण कर शोक, मोह, भय एवं आर्तिप्रद दुस्त्यज स्नेह छोड़ दिया। बाल-घातिनी रानियाँ जो हत्याजनित पापसे श्रीहीन हो गई थीं, उन लोगोंने यमुना तट पर ब्राह्मणोंके आदेशानुसार प्रायश्चित्त किया। महाराज चित्रकेतु भी गृहस्थी के जंजालसे बाहर निकल पड़े, जिस प्रकारसे कोई हाथी भी तालाबके कीचड़से निकल जाता है। उन्होंने जमुनामें स्नान कर धार्मिक कृत्योंका अनुष्ठान किया। तदनन्तर संयतेन्द्रिय तथा मौन होकर देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराकी चरण-वन्दना की। चित्रकेतुको जितेन्द्रिय, शरणागत एवं भक्तिपरायण देखकर नारदजीने प्रसन्न होकर उन्हें इस विद्याका उपदेश दिया—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥
नम विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निर्वृतद्वैतदृष्टये ॥
(भा० ६।१६।१८,१९)

हे ॐकारस्वरूप भगवन्! आप वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणके रूपमें क्रमशः चित्त, बुद्धि, मन और अहंकारके अधिष्ठाता हैं। मैं आपके इस चतुर्व्यूहरूपका बारम्बार नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ। आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं। आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है। आप अपने स्वरूपभूत आनन्दमें ही एवं परम शान्त हैं। द्वैत-दृष्टि आपको छू तक नहीं सकती। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥
ॐ नम भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकर-कमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥
(भा० ६।१६।२०,२५)

आपने अपने स्वरूपभूत आनन्दकी अनुभूतिद्वारा मायाजनित राग-द्वेषादिरूप दोषोंको तिरस्कार कर रखा है। अतएव आपको नमस्कार करता हूँ। आप हृषीकेश

अर्थात् समस्त इन्द्रियोंके अधिष्ठाता, अनन्त-मूर्त्ति एवं महान् हैं। आपको नमस्कार करता हूँ। हे गुणातीत ! हे परमेष्ठिन् (सर्वेश्वर) ! तुम्हारे चरणारविन्दयुगलकी सभी श्रेष्ठ एवं उत्तम भागवत लोग अपने करकमलोंकी कलियोंद्वारा सेवा करते रहते हैं। आप ही भगवान्, महापुरुष, महानुभव, महाविभूतिके अधिपति हैं। ऐसे ओंकार-स्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार इस अलौकिक विद्याका उपदेश देकर देवर्षि नारदजी महर्षि अंगिराके साथ ब्रह्मलोकको प्रस्थान कर गये। राजा चित्रकेतुने नारदजीके द्वारा उपदिष्ट विद्याका उनके आज्ञानुसार सात दिनतक केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रताके साथ अनुष्ठान किया। तदनन्तर इस विद्याके अनुष्ठानसे सात रात्रिके पश्चात् राजा चित्रकेतु को विद्याधरों का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हुआ। इस विद्याके प्रभावसे कुछ ही दिनोंमें उनका मन और भी शुद्ध हो गया। अब वे देवाधिदेव भगवान् शेषजीके चरणोंके समीप पहुँच गये।

मृणालगौर शितिवाससं स्फुरत्
किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम्।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं
ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम्॥
(भा० ६।१६।३०)

उन्होंने दर्शन किया कि भगवान् शेषजी सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान हैं। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्ण है। उसपर नीले रंगका वस्त्र फहरा रहा है। सिरपर किरीट, बाहोंमें बाजूबंद कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं। नेत्र अरुण वर्ण एवं उज्ज्वल हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है।

भगवान्के दर्शनसे चित्रकेतु के समग्र पाप नष्ट हो गये। उनका अन्तःकरण बिलकुल स्वच्छ और निर्मल हो गया। हृदयमें भक्तिकी बाढ़ आ गयी, नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये, शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्होंने ऐसी स्थितिमें आदिपुरुष भगवान् शेषको नमस्कार किया। पहले तो प्रेमावेशकी अधिकताके कारण बहुत देरतक भगवान्की कुछ स्तुति न कर सके। थोड़ी देर बाद बोलने की कुछ-कुछ शक्ति उन्हें प्राप्त हुई। तब उन्होंने विवेकबुद्धिसे मनको समाहित कर इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोककर स्तुति करना प्रारम्भ की—

अजित जितः सममतिभिः
साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता।
विजितास्तेऽपि च भजता-
मकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः॥
(भा० ६।१६।३८)

हे अजित ! जितेन्द्रिय और समदर्शी साधुओंने आपको जीत लिया है। आपने भी अपने सौन्दर्य-माधुर्य-कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने वशमें कर लिया है। अहो ! आप धन्य हैं। क्योंकि जो व्यक्ति निष्काम भावसे भजन करते हैं, उन्हें आप करुणाके परवश होकर अपने आपको भी दे डालते हैं।

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय।
दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां विदा परमहंसाय॥
(भा० ६।१६।४७)

भगवन् ! आपकी अध्यक्षतामें सारे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं। कुयोगी व्यक्ति भेददृष्टिके कारण आपका वास्तविक ज्ञान नहीं पाते। आपका स्वरूप वास्तवमें शुद्ध है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार चित्रकेतु बहुत प्रकारसे

भगवान्‌की स्तुति करते रहे।

अनन्तर चित्रकेतुकी स्तुतिसे भगवान् अनन्तदेव बड़े ही प्रसन्न होकर उनसे इस प्रकारसे कहने लगे—हे चित्रकेतो! देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिराने तुम्हें मेरे सम्बन्धमें जिस विद्याका उपदेश दिया है, उसके प्रभाव तथा मेरे दर्शनके द्वारा अब तुम भलीभाँति सिद्ध हो गये हो।

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ।
शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥
(भा० ६।१६।५१)

मैं ही स्थावर-जंगमात्मक भूतसमूहके रूपमें हूँ, मैं ही सबका आत्मा स्वरूप हूँ एवं मैं ही भूतभावन हूँ अर्थात् भूतोंका प्रकाशक हूँ। शब्द-ब्रह्म एवं पर-ब्रह्म—ये दोनों ही मेरे नित्य शरीर-द्वय हैं। तुम्हें पूर्णतः ज्ञान प्राप्त कर जीवकी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ परमेश्वरकी ही माया है—ऐसा जानकर सबके साक्षी मायातीत मुझ परमात्माका ही स्मरण करना चाहिए।

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ।
ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥
लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ।
आत्मानं यो न बुद्धयेत न क्वचिच्छ्रममाप्नुयात् ॥
(भा० ६।१६।५७,५८)

जब जीव अपने तथा मेरे स्वरूपको भूल जाता है, तब वह अपनेको मुझसे अलग मान बैठता है। इसीसे उसे संसारके चक्करमें पड़ना पड़ता है और जन्म-परजन्म एवं मृत्युके पश्चात् मृत्यु प्राप्त होती है। यह मनुष्ययोनि ज्ञान और विज्ञानका मूल स्रोत है। जो इसे पाकर अपने आत्मस्वरूपको और मुझ परमात्माको जान नहीं लेता, उसे कहीं किसी योनिमें भी शान्ति नहीं मिल सकती।

इस प्रकारका ज्ञानोपदेश देकर भगवान् जगद्गुरु विश्वात्मा संकर्षण चित्रकेतुके देखते-देखते उनके सामने ही अन्तर्हित हो गये।

जिस दिशामें भगवान् संकर्षण अन्तर्धान हुए थे, विद्याधराधिपति चित्रकेतु उस ओर नमस्कार कर आकाश-मार्गमें स्वच्छन्द रूपसे भ्रमण करने लगे। करोड़ों वर्षों तक उन्होंने सुमेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार किया। उनका बल, इन्द्रियोंकी शक्ति अभूतपूर्व हो गई। बड़े बड़े सिद्ध-मुनि-चारण लोग उनकी स्तुति कर अपने को धन्य मानते। उनकी प्रेरणासे विद्याधरोंकी स्त्रियाँ उनके निकट भगवान्‌के गुण-लीलादिका गान करती थीं।

एकदिन चित्रकेतु भगवान् विष्णुके प्रदत्त तेजोमय विमानपर चढ़कर कहीं जा रहे थे कि उन्होंने सिद्ध-चारणों-मुनियोंकी सभामें महादेव शिवको भगवती पार्वतीको गोदीपर बैठाकर आलिङ्गन करते हुए देखा। उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। वे जोरोंसे हास्य करते हुए पार्वतीको सुनाते हुए ऐसा परिहास वाक्य कहने लगे—

ये शिव तो साक्षात् लोकगुरु हैं। ये देहधारियोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं धर्मके वक्ता हैं। क्या आश्चर्य है कि ये मुनियोंकी सभामें भार्याके साथ मिलित होकर विराजमान हैं। साधारण एवं नीच व्यक्ति भी गोपनमें ही पत्नीको धारण करते हैं। किन्तु इन महादेवने तो तपस्वी होकर भी सभा मध्यमें ही पत्नीको गोदीपर बैठा लिया है।

यह बात सुनकर शिवजी तो हँसकर चुप रह गये एवं उनके अनुचरोंने भी उनका अनुसरण किया। किन्तु शिवके प्रभावको न जाननेवाले एवं शिवके प्रति शासनव्यंजक अनुचित वाक्य प्रयोग करनेवाले जितात्माभिमानी धृष्ट चित्रकेतुसे क्रुद्ध होकर पार्वतीजी ऐसा कहने लगीं—

क्या हम जैसे निर्लज्ज, दुष्टलोगोंका शासनकर्त्ता, दण्डधारी एवं एकमात्र प्रभु क्या यह विरुद्ध आचरणवाला व्यक्ति ही है? क्या हम जैसोंका संसारमें धर्मका ज्ञान नहीं है? क्या यही धर्मका रहस्य जानता है? क्या पद्मयोनि ब्रह्मा, ब्रह्मपुत्र भृगु-नारदादि ऋषि लोग, सनत्कुमार, कपिल, मनु आदिको क्या धर्म-ज्ञान नहीं है, जो कि शंकरजीको इस शास्त्रविरुद्ध दुष्कार्यसे निवारण नहीं कर सकते थे? ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं, उन्हीं मंगलोंके भी मंगलस्वरूप साक्षात् जगत्पूज्य परम धर्ममूर्त्ति शिवका एवं उनके अनुयायी महात्माओंका तिरस्कार एवं शासन करनेकी कुचेष्टा की है। अतएव यह ढीठ सर्वदा दण्डनीय है। यह आत्माभिमानी दुर्विनीत व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके उन चरणकमलोंके आश्रयमें रहने योग्य नहीं है, जिनकी उपासना बड़े बड़े सत्पुरुष किया करते हैं। अतः हे दुर्मते! तुम पापमय आसुरी योनिमें जाओ। ऐसा होने से फिर कभी तुम किसी महापुरुषके प्रति अपराध न कर सकोगे।

माता पार्वतीके क्रोधित होकर शाप देने पर वे विमानसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे। वे कहने लगे—मैं बड़ी प्रसन्नतासे दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ। क्योंकि देवता लोग मनुष्योंको पूर्वजन्मके कर्म-फलानुसार ही सुख या दुःख प्रदान करते हैं।

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः।
भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा॥
नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः।
कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च॥
गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः कोऽनुग्रहः।
कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा॥
एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया।
एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः॥
न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो
न ज्ञातिबन्धुर्न परो न चात्मः।
समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य
सुखे न रागः कुत एव रोषः॥
(भा० ६।१७।१८-२२)

अविद्याच्छन्न जीव इस संसार-वनमें भ्रमण करते करते सभी देशोंमें सभी समयमें पूर्वकर्मानुसार सुख एवं दुःख भोग करता है (अतएव इस शाप प्रदानमें मेरा या आपका कोई दोष नहीं है)। इस संसारमें स्वयं या शत्रुमित्र आदि दूसरे कोई सुखदुःख का कर्त्ता नहीं है, किन्तु अज्ञ व्यक्ति अपनेको या दूसरेको इस विषयमें सुख-दुःखके कर्त्ता समझते हैं। यह संसार ही मायामय गुणप्रवाह स्वरूप है। अतएव इसमें शाप ही क्या है? अनुग्रह ही क्या है? स्वर्ग ही क्या है? नरक ही क्या है? और सुख-दुःख ही क्या है? अर्थात् इनमें किसी की भी वास्तविक सत्ता नहीं है। बन्ध-मोक्षरहित एकमात्र भगवान ही उनकी मायाद्वारा प्राणियोंकी सृष्टि किया करते हैं। मायांशभूत अविद्याद्वारा उनका बन्ध और विद्याद्वारा मुक्तिप्रदान एवं सत्वगुणमें सुख

एवं रजोगुणमें दुःख प्रदान करते हैं। भगवान् सभी भूतोंमें सम हैं। इसलिए उनका प्रिय और अप्रिय, ज्ञाति या बन्धु, पर एवं आत्मीय कोई नहीं है। अतएव उस निःसंग-पुरुषका सुखमें अनुराग नहीं है। इसलिए रोष कैसे होगा ?

तथापि उनकी मायाशक्ति द्वारा पुण्य-पाप आदि कर्म सृष्टि कर इन सभी जीवोंके सुख-दुःख, मंगल-अमंगल, बन्ध-मोक्ष, एवं जन्म-मृत्युरूप संसारके कारण बनते हैं। अर्थात् जीवके कर्मफलानुसार गुणमाया ही पुण्य-पापादि कर्म सृष्टि कर जीवके जन्म-मृत्यु आदिकी हेतु बनती है।

प्रतिप्राणा देवि ! मैं शापसे मुक्त होनेके लिए आपसे प्रार्थना नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि सुख-दुःख मनुष्योंको अपने-अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होता है)। मेरा वाक्य संगत होने पर भी जो आप उसे असंगत समझती हैं, उसके लिए आप मुझे क्षमा करें। ऐसा कहकर चित्रकेतु शिव और पार्वतीको प्रसन्न कर उन लोगोंके सामने ही अपने विमानपर आरोहण कर चले गये। शाप-श्रवणसे भी चित्रकेतु भीत नहीं हुए—ऐसा देखकर शिव-पार्वती दोनों ही आश्चर्यको प्राप्त हुए।

तब शंकरजीने देवता, ऋषि, सिद्ध और पार्षदोंके सामने ही पार्वतीसे यह कहा—हे सुन्दरि ! दिव्यलीलाविहारी भगवान् श्रीहरिके निःस्पृह और उदारहृदय दासानुदासोंकी महिमा तुमने अपने आँखोंसे देख ली।

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः॥
(भा० ६।१७।२८)

जो लोग भगवान्के शरणागत भक्त होते हैं, उन्हें कहीं से भी कोई भय नहीं है। उनके लिए स्वर्ग, मोक्ष और नरक—तीनोंमें ही एक वस्तु—केवल भगवान्के ही दर्शन होते हैं।

जीवोंको भगवान्की मायासे ही देह-संयोगके कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण, शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं। जैसे स्वप्नमें भेद-भ्रमसे सुख-दुःख आदिकी प्रतीति होती है, जाग्रत अवस्थामें भ्रमवश मालामें ही सर्प-बुद्धि हो जाती है, वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मामें देवता, मनुष्य आदिका भेद तथा गुण-दोष आदिकी कल्पना कर लेता है। जिनके पास ज्ञान एवं वैराग्यका बल है और जो भगवान् वासुदेवके चरणोंमें भक्तियुक्त हैं, उनके लिए जगत्में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वे उपादेय या हेय समझकर राग-द्वेष करें।

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ
न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः।
विदाम यस्येहितमंशकांशका
न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः॥
(भा० ६।१७।३२)

जब मैं, ब्रह्माजी, सनकादि, नारद, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदि मुनि लोग, बड़े-बड़े देवता आदि कोई भी भगवान्की लीलाका रहस्य नहीं जान पाते, तब जो श्रीहरिके अंशके अंश होकर भी अपनेको स्वतन्त्र-कर्त्ताभिमानी पुरुष भी निश्चय ही उनके स्वरूपको जान नहीं सकते; अथवा मैं (शिव), ब्रह्मा, अश्विनीकुमार द्वय, ब्रह्मपुत्र, नारदादि ऋषि लोग, देवेन्द्र आदि हम लोग यदि स्वतन्त्र ईश्वराभिमान करें, तो हम लोग भगवान्के अंशके अंश होने पर भी उनके स्वरूपको समझनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे।

भगवान्का न तो कोई प्रिय है और न

कोई अप्रिय। उनका न तो कोई अपना है और न कोई पराया। वे सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, इसलिए सभी प्राणियोंके प्रियतम हैं। हे प्रिये! ये परम भाग्यवान चित्रकेतु भी उन्हींके प्रिय सेवक हैं, सर्वभूतोंमें समदर्शी और रागद्वेषशून्य हैं। मैं भी भगवान् श्रीहरिका ही प्रिय हूँ। इसलिए तुम्हें भगवान् के प्यारे, शान्त, समदर्शी, महात्मा भक्तोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका आश्चर्य या विचार नहीं करना चाहिए।

शंकरजीके ऐसे वचन सुनकर पार्वतीजी विस्मय परित्याग कर बुद्धि स्थिर कर शान्त हो गईं। यद्यपि चित्रकेतु भगवती पार्वतीको शाप देनेमें समर्थ थे, तथापि उन्होंने ऐसा नहीं किया। बल्कि नतमस्तकसे देवीजीका शाप स्वीकार कर लिया। यही साधु या भक्तका स्वाभाविक लक्षण है।

यही विद्याधर चित्रकेतु दानव-योनिका आश्रय लेकर त्वष्टाके दक्षिणाग्निसे प्रकट हुए। वहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ। किन्तु फिर भी ये भगवत् स्वरूपके ज्ञान एवं भक्तिसे परिपूर्ण ही रहे।

(क्रमशः)

— वागरोदी श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री,
काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

श्रीमद्भागवतके टीकाकार (६)

श्रीविजयध्वजतीर्थ

परिचय—मध्व-सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने श्रीमद्भागवतपर टीकाएँ लिखी हैं जिनमें अनेक अपूर्ण टीकाएँ आज भी उपलब्ध हैं। किन्तु विजयध्वजाचार्यकृत पदरत्नावली नामक टीका का अपना एक प्रधान वैशिष्ट्य है। यह टीका सम्पूर्ण भागवतपर उपलब्ध है। इस सम्प्रदायकी टीकाओंका यह प्रतिनिधित्व करती है।

अपने वैयक्तिक जीवनके विषयमें टीकाकारने कुछ भी नहीं लिखा है। सम्प्रदायज्ञोंके कथनके अनुसार ये पेजावर मठके अध्यक्ष थे। श्रीमाध्व-सम्प्रदायके मठोंमें यह सातवीं संख्याका मठ कहा जाता है।

श्रीविजयध्वजजी व्याकरण, साहित्य एवं वेदान्त-शास्त्रके पारङ्गत विद्वान् थे। पुराण एवं भक्तिशास्त्रके महान् स्तम्भ स्वरूप थे महेन्द्रतीर्थ नामक विद्वान्के ये शिष्य थे, यह इनके कथनके द्वारा पुष्ट होता है—

"इति श्रीमद्महेन्द्रतीर्थपूज्यपादशिष्य-विजयध्वजतीर्थ भट्टारकस्य कृतौ श्रीभागवत-टीकायां पदरत्नावल्यां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः।"

सम्प्रदाय—महेन्द्रतीर्थ अवश्य इनके दीक्षागुरु रहे होंगे, क्योंकि महेन्द्रतीर्थ तत्कालीन मठके महन्त पदपर आसीन थे, यह टीकाकारने मंगलाचरणमें उल्लेख किया है—

चरणनलिने दैत्यारातेर्भवाणंवोत्तरसत्तरीम् ।
दिशतु विशदां भक्तिं महयं महेन्द्रतीर्थयतीश्वरः ॥

महेन्द्रतीर्थ द्वैतवादी आचार्य थे, इसलिए ये भी इसी सम्प्रदायके सिद्ध होते हैं । श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त गौरवपूर्ण ग्रन्थ है । इसके शब्दार्थका ज्ञान भी अत्यन्त विलष्ट है, केवल गुरुकी अनुकम्पाद्वारा इसे समझा जा सकता है । वे लिखते हैं—

'क्व शब्दः क्वाभ्यासः श्रुतिरपि गुरोः क्वाग्रसरणी
समीक्षा पौराणी क्व खलु विबुधा मत्सरिपः ।
तथापि व्यामोहाद् गुरु गुरुकटाक्षैक शरणो
मनाग् व्याकुर्वेहं भागवत-पुराणं प्रगहनम् ॥"

श्रीआनन्दतीर्थ एवं श्रीविजयतीर्थ कृत भागवत-टीकाओंका इन्होंने स्वाध्याय किया था एवं उनके अवलम्बन पर ही उन्होंने अपनी टीका का निर्माण किया था, ऐसा उन्होंने स्वयं लिखा है—

आनन्दतीर्थं विजयतीर्थौ
प्रणम्य मस्करि वरवन्द्यौ ।
तयो कृतिं स्फुटमुपजीव्य
प्रवच्मि भागवत पुराणम् ॥

श्रीमध्वाचार्यका नाम आनन्दतीर्थ था; प्रायः उनके लिए सर्वत्र इन्होंने इस नामका ही उल्लेख किया है । श्रीमन्मध्वाचार्यने 'भागवत-तात्पर्य' लिखा है । किन्तु श्रीविजयतीर्थकी टीकाका कहीं पता नहीं लगता । उक्त मंगलाचरणसे यह स्पष्ट है कि विजयतीर्थने भी भागवतपर अवश्य कोई टीका लिखी होगी, किन्तु अब वह उपलब्ध नहीं है ।

आद्य-पद्य-व्याख्यामें लिखित वृत्तान्तके अनुसार श्रीविजयध्वजने भागवतकी टीकाकी रचना समुद्रके मध्य किसी स्थल-विशेषपर की थी । इसमें इनका पूर्णवृत्तान्त लिखा है—

श्रीविजयध्वजतीर्थ श्रीसुखतीर्थके कृपा-पात्रशिष्य थे; एक समय रजतपीठपुरवासी एवं अपने समान अन्य संस्थानोंके अधिपतियों के साथ ये सूर्योपरागमें स्नान करने गए । इस यात्रामें इनके साथ गृहस्थी जनवर्ग एवं कतिपय भिक्षुकगण भी थे । समुद्रमें स्नान करनेके उपरान्त वहाँसे थोड़ी दूर चलकर ये एकान्त स्थलमें तपस्या करनेके विचारसे बैठ गए । थोड़े समय उपरान्त सामुद्रिक व्यापारी की दृष्टि इनपर पड़ी और अपने सहयोगी नाविकों की सहायतासे बलपूर्वक इन्हें पकड़कर अपने नाँवमें चढ़ा लिया । थोड़ी देर बाद यह नौका समुद्रके एक द्वीपमें पहुँच गई । उस वैश्यने इन्हें उसी टापूमें रख लिया ।

इस स्थल पर श्रीविजयध्वजतीर्थने भागवतकी टीका लिखी । इस व्याख्यामें श्रुति-प्रमाण तथा श्रीमध्वाचार्यकृत 'भागवत-तात्पर्य' की संगति बैठाकर ग्रन्थका मर्म बड़ी विद्वत्तासे प्रकाशित किया । इस व्याख्यानकी महत्ता देखकर श्रीनारदादि मुनि लोग इसे नरलोकके उचित न मानकर दिव्य लोकोंमें ले गये । इसी प्रकार द्वितीय प्रयत्नकी कृतिको भी ऋषि-मुनि लोग अपने साथ ले गये । तृतीय-बार गुरुकी आज्ञासे इन्होंने पुनः टीका लिखी, वह पदरत्नावलीके नामसे प्रसिद्ध हुई ।

इस वृत्तान्तका उल्लेख आद्य-पद्य व्याख्या में वेंकटाचार्यके शिष्य श्रीअहोबल-नृसिंहने किया है । यह वृत्तान्त उन्होंने अपने पूर्वाचार्योंके मुखसे सुना था । इस वृत्तान्तके लेखक श्रीमन् नृसिंहाचार्य एक प्रामाणिक विद्वान थे एवं वे श्रीवेंकटाचार्यके पौत्र तथा श्रीवासुदेवार्यके पुत्र थे ।

इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य विजयध्वज एक उच्च कोटिके विद्वान् एवं दैवी आज्ञासे इस ग्रन्थकी टीकामें अभिरुचि रखते थे।

श्रीविजयध्वजके उपास्य श्रीविट्ठल थे। उनके अनुसार विट्ठल ही परम तत्त्व हैं। सृष्टि-स्थिति-संहार कर्त्ता भी वे ही हैं—

यल्लीला जल-राशि लोल-
लहरी स्नान-क्षमाणां नृणां,
संसारोदधिराशुशुष्यति-
तरामग्न्युग्रशुष्कंधवत्।
यस्माद्विश्वमशेषमुद्भवति
यस्तत्त्वं परं योगिनां,
श्रीमन्तं तमुपास्महे
सुमनसामिष्टप्रदं विट्ठलम् ॥ १ ॥
सुनीलनीरदश्यामं सच्चिदानन्दविग्रहम्।
रमारमणमीशेषं विट्ठलं समुपास्महे ॥२॥

श्रीविजयध्वजजीके अक्षर संश्लिष्ट एवं विद्वत्तापूर्ण हैं, कवितापर इनका सहज अधिकार है, प्राय: दीर्घाक्षर छन्द ही इन्हें अच्छे लगते हैं—

अगाधश्रीमद्भागवत जलराशौ मणिगणं,
तृतीयस्कन्धोद्भ्रमनवगाहं मृगयति।
निमज्योन्मज्यार्थेऽनुभवगनुरक्तेऽप्यसाविपः,
कृपालेशं संत: खलु विदधतां मय्यनुपदम् ॥

अद्वैतवादसे इन्हें बहुत ही चिढ़ थी। अतएव इन्होंने अपनी-भागवत-टीकामें अद्वैतपरक पक्षका प्रबल शब्दोंसे खण्डन किया है। अद्वैतवाद को "पाखण्डवाद" कहा करते थे।

स्थितिकाल—इन्होंने अपने स्थितिकालके विषयमें कहीं कुछ नहीं लिखा है और न किसी कृतिके विषय में ही। तथापि बाह्य-साक्ष्य एवं अन्त: साक्ष्यके आधार पर इनका काल १५०० विक्रम सं के पूर्व सिद्ध होता है। क्योंकि श्रीमध्व-सम्प्रदायके पांधरी श्रीनिवासने, सत्यधर्म-शेषाचार्य, चेट्टी वेंकटाद्रि, लिघेरी श्रीनिवास एवं व्यास-तत्त्वज्ञने श्रीविजयध्वजका उल्लेख किया है। उक्त विद्वानोंका समय 'गौडीय दर्शनेर इतिहास' के लेखकके अनुसार निम्नलिखित है—

(१) शेषाचार्य—१६१० ई०, (२) चेट्टी वेंकटाद्रि—१६१० ई०, (३) लिघेरी श्रीनिवास—१४८० ई० (४) व्यासतत्त्वज्ञ—१४६० ई०।

अत: श्रीविजयध्वजकी स्थिति बाह्य-साक्ष्यके आधारपर १४६० ई० पूर्व मानी जा सकती है।

श्रीविजयध्वजने श्रीजयतीर्थ एवं श्रीमध्वचार्यजीका स्मरण किया है। इनमें श्रीमध्वाचार्यका समय १३ वीं शताब्दी एवं श्रीजयतीर्थ श्रीमध्वाचार्यके पश्चात् अर्थात् १०वीं शताब्दीके हैं। व्यासतत्त्वज्ञ १५वीं शताब्दीके हैं। अतएव श्रीविजयध्वजका समय ई० १४०० से १४५० ई० तक या विक्रम संवत् १४५७ से १५०७ तक माना जा सकता है।

कृतियाँ—श्रीविजयध्वज कृत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) यमक भारत टीका—यह महाभारत का सार मात्र है।

(२) दशावतार—इसमें भगवान्के प्रमुख दशावतारोंकी स्तुति है।

(३) श्रीकृष्णाष्टक—इसमें ८ श्लोक कृष्णकी महिमाके वर्णन हैं।

(४) पदरत्नावली—भागवतकी टीका है।

इस ग्रन्थमें विद्वत्तापूर्वक अन्य सम्प्रदायोंकी अपेक्षा अपने सम्प्रदायकी उत्कृष्टता एवं वेद-सम्मतता दिखलाने का प्रयत्न किया है।

टीका-वैशिष्ट्य—श्रीविजयध्वजकृत भागवत-टीका का नाम 'पदरत्नावली' है। यद्यपि इसे 'तात्पर्य-व्याख्या' के नामसे भी पुकारा जाता है, तथापि इसका नाम भागवत-टीकामें पदरत्नावली ही है। यथा—"श्रीमद्भागवत-टीकायां पदरत्नावल्यां प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्याय:।" यह टीका सम्पूर्ण भागवत पर की गई है। यह टीका न तो सुबोधिनी जैसी विस्तृत शैलीमें लिखी गई है और न शुकपक्षीया जैसी संक्षिप्त शैलीमें। टीकाकारका मुख्य उद्देश्य द्वैत-सम्प्रदायके तत्वोंका भागवतमें अन्वेषण एवं उनका प्रतिपादन है।

टीका-शैली—श्रीविजयध्वजकृत पदरत्नावलीकी भाषा सुसंस्कृत, सानुप्रास एवं सौष्ठवयुक्त है। जहाँ तक मूल स्पष्ट करना आवश्यक है, वे शब्द स्पष्ट करनेमें संकोचशील नहीं हैं। किन्तु अनावश्यक शब्दोंका प्रयोग भी नहीं किया है। भूमिकामें कुछ शब्दोंमें बाँध देते हैं। यथा—

"अत्राद्वैतवादिनो निर्गुणं वाङ्मनसागोचरं जगत्कारणं सगुणमिति द्विविधं कल्पयन्ति तन्मतनिराकरणायाह।"

इनकी शैलीमें कहीं-व्यङ्ग्य भी देखा जाता है—

"देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्था पंचदेवता"

'देही' शब्द श्रवणगोचर होते ही कृष्णके धी, श्री, ह्री आदि पंच-देवता निकल जाते हैं।

कहीं-कहीं सरस उक्तियाँ भी देखी जाती हैं, जिससे टीकामें एक विशेष सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है—

श्रीलक्ष्मीका स्वयंवर होने जा रहा है। सरस्वती उनके साथ हैं। वे परिचय करा रही हैं। लक्ष्मीजीने सोचा—यह ब्रह्मा अति वृद्ध है, सूर्यमें अत्यधिक ताप है, पवन चञ्चल है, शिव नग्न है, इन्द्र अत्यन्त अभिमानी है, चन्द्रमा क्षीणतादोषसे युक्त है। अत: निर्गुण मुरारिके गलेमें माल्यार्पण करना उचित है।

गोपीयणकृत न्यासके मूलमें 'अज' आदि भगवन्नामोंका न्यास श्रीकृष्णके अङ्गमें करने का विधान है। वहाँ टीकाकारने 'ॐनमो नारायणाय' अष्टाक्षर मंत्रका न्यास विधान किया है।

"तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि।"
(भा० २।५।१२)

उक्त श्लोक मध्व-सम्प्रदायका मंत्र माना गया है।

"एकाऽयनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल:" श्लोकमें द्वैतवादका निरूपण स्पष्ट शब्दोंमें किया है। एकादश-स्कन्धके "सुपर्णावेतौ" श्लोकमें भी जीवात्मा तथा परमात्माका भेद स्पष्ट लिखा है।

मौलिक-विचार—टीकाकारने कहीं-कहीं अपनी सूझबूझका भी परिचय दिया है। यथा चतुर्थस्कन्धमें विष्णु भगवान्‌के आठ आयुधोंमें पद्मको भी गिनाया गया है—

अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभि: सुरेन्द्रै:।
(भा० ४।३०।)

परन्तु श्रीविजयध्वजका कहना है कि पद्मसे किसी प्रकारसे किसी पर प्रहार नहीं किया जा सकता। अत: आयुधोंमें इसे रखना अनुचित है। यहाँ अष्टायुधोंमें पद्मके स्थानपर परशु-पाश-अंकुश—इन तीनोंमें से एक मानना उपयुक्त होगा।

श्रीधर स्वामीके मतका कहीं-कहीं समादर भी किया है। इस टीकामें भागवतका पाठ-भेद लक्ष्य किया जाता है। न केवल श्लोक-संख्यामें अपितु अध्याय-संख्यामें भी पर्याप्त भेद देखनेमें आता है।

कतिपय ऐसे अध्याय हैं जो भागवत-कथासे सम्बद्ध हैं। किन्तु उन्हें अन्य किसी टीकाकारने नहीं ढूँढ़ा। श्रीविजयध्वजने शतशः श्लोक भागवतसे भिन्न लिखे हैं। अतः श्रीभागवत-पुराणके सम्बन्धमें विचार करने पर श्रीविजयध्वजकी टीका भी देखना आवश्यक है।

ग्रन्थादिके अधिक उल्लेख इस टीकामें नहीं है। गौतम-सूत्र, यादव, वागुरी एवं वायु-पुराण आदिके उल्लेख अधिक संख्यामें किये हैं। वायुपुराणके अधिक उल्लेख करनेका कारण यह है कि श्रीविजयध्वजके पूर्वगुरु श्रीमध्वाचार्य वैकुण्ठस्थ वायुके अवतार हैं।

श्रीविजयध्वजने भागवतमें समागत मूल श्लोकोंको श्रुतियोंसे सम्बन्धित दिखलाया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भागवत-रचयिता श्रीवेदव्यासने किन-किन उपनिषद् वाक्योंका समादर किया है। श्रुति-व्याख्याके आरम्भमें उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि ये मूल-श्रुतियोंसे सम्बन्धित श्लोक हैं। जैसे—'जय जय जह्यजा' श्लोक 'अस्य सृजतो हित' इस मूल-श्रुतिसे सम्बद्ध है। इन श्रुतियोंमें पूर्वापर सम्बन्ध नहीं है।

"हन् हिंसाया" मिति धातुः पृथक् श्रुतित्वान्न पूर्वापर सम्बन्धः उपलक्षणत्वादनन्तत्वाच्छ्रुतीनां सर्व श्रुत्यर्थोपबृंहितत्वाच्च तेषां श्लोकानां न सर्वश्रुतिनां पृथगुक्तिः—

सर्वश्रुत्यर्थसम्पन्नान् श्लोकान् सत्यवतीसुत
एकैक शाखा श्रुत्यर्थान् जगौ सर्वोपलक्षणान्।
बबन्ध तान् भागवते प्रतिश्लोकं पृथक् श्रुती
इत्याचार्यैरेव उक्तत्वात् नास्माभिर्मिथः
सम्बन्धार्थं प्रपञ्च्यते॥

अर्थात् भागवत-रचयिता श्रीवेदव्यासने प्रत्येक शाखाकी श्रुतिके अर्थोंको श्रीमद्-भागवतमें समस्त उपलक्षणोंसे परिपूर्ण एवं सर्वश्रुतिके अर्थसे सम्पन्न श्लोकाकारमें बनाया एवं प्रत्येक श्लोक पृथक्-पृथक् श्रुतिका प्रतिपादन करता है। आचार्योंकी ऐसी उक्तिके कारण हमारे लिए वृथा सम्बन्ध-अर्थ ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है।

डा० श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, साहित्यरत्न
एम० ए०, पी. एच. डी.

परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुपादपद्मका

तृतीय-वार्षिक विरहोत्सव

विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके संस्थापक नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके परमप्रेष्ठ निजजन, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता-सभापति-आचार्य, श्रीस्वरूपरूपानुगवर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज का तृतीय-वार्षिक विरह-महोत्सव गत १७ आश्विन, ५ अक्टूबर मंगलवार कृष्ण-प्रतिपदाको समितिके मूल-केन्द्र एवं तदन्तर्गत सभी शाखा-मठोंमें बड़े समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ है । उक्त दिवस सभी मठोंमें श्रीगुरुतत्त्वकी महिमा-कीर्तन, श्रील आचार्यकेशरीके अप्राकृत जीवन चरित्रके विविध वैशिष्ट्योंके विषयमें विशद आलोचना की गयी ।

श्रीकेशवजी गोड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस प्रातःकाल मंगलारतिके पश्चात् श्रीगुरुवन्दना, श्रीगुर्वष्टक, श्रीगुरुपरम्परा, वैष्णव-वंदना, पंचतत्त्व एवं महामंत्र आदि कीर्तनके पश्चात् समितिके वर्तमान सभापति आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त-वामन महाराजजी एवं त्रिदण्डिस्वामी नारायण महाराजजीने परमाराध्यतम श्रील-गुरुदेवके जीवनचरित्रके विविध वैशिष्ट्योंका श्रद्धापूर्वक वर्णन कर श्रोताओंको भावविभोर कर दिया ।

पूर्वाह्ण १० बजे मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड, नन्दगाँव एवं बरसाना आदि स्थानोंके प्रपूज्यचरण वैष्णवाचार्यों एवं वैष्णववृन्दके आगमनके पश्चात् प्रपूज्यचरण परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-भूदेव श्रौती महाराजके सभापतित्वमें एक विरह-सभाका आयोजन किया गया । श्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज एवं सारस्वत गौड़ीय-धाराके प्रधान कीर्तनीया पूज्यपाद मोहिनीमोहन 'रागभूषण' प्रभुने श्रीगुरु-वन्दना और विरह-सूचक वैष्णव-महाजन पदावलियोंका करुण स्वरसे कीर्तन किया । तदनन्तर परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्री श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-वेदान्त उर्द्धमन्थी महाराज, श्रीपाद मोहिनी मोहन रागभूषण महोदय, श्रीपाद कृष्णकेशव प्रभुजी, पं० श्रीमदनमोहन ब्रह्मचारी और अंतमें पूज्यपाद सभापति महोदयने परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके जीवन चरित्रके विविध पहलुओं एवं विविध वैशिष्ट्यों पर विशदरूपसे प्रकाश डाला । उन वक्ताओंने श्रील आचार्य-केशरीके निर्भीक सत्यवक्ता, सुलेखक, गंभीर दार्शनिक एवं तत्वविद्, समाज-संस्कारक, आदर्श-गुरुसेवक, अतुलनीय संगठनकर्त्ता, अतिशय सहिष्णु, परम दयालु, परोपकारी, सेवक-वत्सल एवं सर्वोपरि आदर्श गुरुनिष्ठा-सम्पन्न होनेकी विविध घटनाओंका उल्लेख करके बड़ा ही प्रभावोत्पादक विवेचन प्रस्तुत किये । पश्चात् श्रीपाद भक्तिवेदान्त नारायण

महाराजने उपस्थित पूजनीय वैष्णव आचार्यों एवं वैष्णववृन्दको इस विरहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की। अंतमें वैष्णव-पदावली और महामंत्र-कीर्तनके पश्चात् सभा भंग हुई।

तदनन्तर श्रीश्रीगुरु गौराङ्ग-गान्धर्विका गिरिधारी श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीजीके मध्याह्न भोगराग और आरती सम्पन्न होनेपर उपस्थित पूजनीय वैष्णवों एवं निमंत्रित-अनिमंत्रित सैकड़ों श्रद्धालुओंको विविध प्रकारका महाप्रसाद वितरण किया गया।

संध्यारतिके पश्चात् पूज्यपाद श्रीमद् वामन महाराजके सभापतित्वमें मठके विभिन्न ब्रह्मचारी-वक्ताओंने श्रीश्रीगुरुदेवकी महिमा का वर्णन करते हुए उनके श्रीचरणकमलोंमें अपनी-अपनी भावभीनी श्रद्धा-पुष्पांजलि अर्पित कीं। जो गुरुसेवकगण इस विरह-महोत्सवमें किसी कारण सम्मिलित न हो सके, उनके द्वारा प्रेषित श्रद्धा-पुष्पाजलियाँ श्रीश्रीगुरुपादपद्मोंमें समर्पित कर दी गयीं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें—

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीप में भी समितिके सेक्रेटरी पूज्यपाद त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज की अध्यक्षतामें एक विरह-सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज, श्रीमान् नवयोगेन्द्र ब्रह्मचारी, श्रीकृष्ण-कृपा ब्रह्मचारी, श्रीमान् वृषभानु ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने एवं अंतमें पूज्यपाद सभापति महोदयने परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मकी विशद महिमाका वर्णन किया। रातमें भी मठस्थ अन्यान्य ब्रह्मचारियोंने भी श्रीश्रील आचार्यकेशरीकी महिमाका वर्णन कर तदीय अशोक-अभय श्रीचरणकमलोंमें अपनी-अपनी श्रद्धा-पुष्पांजलि अर्पित कीं।

मध्याह्नमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग श्रीराधा-विनोदविहारीजीके भोगराग-आरतिके पश्चात् लगभग ५०० श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

निजस्व-संवाददाता

—*—

विरह-संवाद

(क) श्रीमती सरोजवासिनी "पिसी-माँ"—

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंसकुलचूड़ामणि ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीकी सर्वप्रथम महिला शिष्या परम वैष्णवी श्रीमती सरोजवासिनी "पिसी-माँ" (बूआजीके नामसे प्रसिद्ध) का गत ३१ अगस्त, १४ भाद्र, मंगलवार, शुक्ला दशमीको दिनके २'३० बजे श्रीहरिनाम स्मरण करते-करते सज्ञानावस्थामें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके महिला-विभागस्थ भजन कुटीर में परलोकगमन हो गया। परलोकगमनके समय उनकी आयु लगभग ९२ वर्षकी थी।

अविभाजित बंगालके बारीसाल जिलान्तर्गत बनारीपाड़ा नामक प्रसिद्ध गाँवमें एक उच्च मर्यादासम्पन्न कुलमें इनका जन्म हुआ था।

बचपनसे ही ये धार्मिक स्वभावकी थीं। अल्प आयुमें ही विधवा हो गयीं। कुछ ही दिनोंमें विश्वभरमें श्रीचैतन्य-वाणी एवं प्रेम-धर्मका प्रचार करने वाले जगद्गुरु श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके धर्म-प्रचारसे प्रभावित होकर उनसे श्रीहरिनाम-मंत्र एवं दीक्षामंत्र ग्रहण कर निष्ठापूर्वक भगवद्भजनमें लग गयीं। इन परम वैष्णवीकी प्रेरणासे ही मदीय गुरुपादपद्म ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्ति-प्रज्ञान केशव गोस्वामी एवं तदीय अग्रज-प्रपूज्यचरण परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्ति केवल औडुलोमी महाराज (श्रीगौड़ीय मिशन, कलकत्ताके वर्त्तमान आचार्य) आदि श्रील प्रभुपादजीके श्रीचरणाश्रित हुए। वे इन दोनों महापुरुषोंकी 'पिसी-माँ' (बूआ) लगती थी।

पहले वे श्रीधाम मायापुरमें भजन-कुटीर में रह कर भजन करती थीं। परन्तु श्रील प्रभुपादजीके अप्रकटलीलाके पश्चात् वे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके महिला-कक्षस्थित भजन कुटीरमें रहकर भजन करती थीं।

ये बड़ी ही विदुषी महिला थीं। इनके रचित श्रीगुरु-भगवान एवं वैष्णवोंकी महिमा-सूचक अनेकों पद हैं। इन पदोंमें सुसिद्धान्त-पूर्ण भक्तिभाव ओत-प्रोत हैं। वे बड़ी ही सरल, मृदुभाषिणी, नम्र-स्वभावसम्पन्न थीं। शिक्षाष्टक का "तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥"—श्लोक इनके जीवनमें चरितार्थ होता था। दैन्य और मानदकी तो मानो साक्षात् मूर्त्ति ही थीं। श्रील प्रभुपादके अति उच्चकोटिके संन्यासी-वृन्द भी सर्वप्रकारसे इनके प्रति श्रद्धा एवं आदरका भाव रखते थे। ये भी छोटे बड़े सभीको यथायोग्य सम्मान प्रदान करती थीं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अनुगत जनोंपर तो इनकी बड़ी कृपा थी। इनके परलोक-गमनसे समस्त गौड़ीय वैष्णवोंकी, विशेषतः श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी अमूल्य निधि खो गयी। वे हम सदृश दीन-हीन सेवकोंके प्रति परलोकसे भी सदासर्वदा कृपा करती रहें—यही उनके श्रीचरणोंमें हमारी प्रार्थना है।

(ख) परलोकमें श्रीपाद हरिपद दासाधिकारी—

हम बड़े खेदके साथ यह विरहपूर्ण संवाद दे रहे हैं कि श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक-सभापति आचार्यकेशरी नित्य-लीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीलभक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके पदाश्रित परम भागवत श्रीहरिपद दासाधिकारीकी उनके अपने श्रीरामपुर (पश्चिमबंग)-स्थित वासभवनमें १० सितम्बरकी रातमें २·३० को सज्ञानावस्थामें हरिनाम स्मरण करते-करते परलोकप्राप्ति हो गयी। इस समय उनकी आयु लगभग ६० वर्षकी थी।

ये बचपनसे ही बड़े परिश्रमी, दृढ़निश्चयी, श्रद्धालु एवं धार्मिक प्रवृत्तिके थे। बचपनमें ही मातापिताका देहान्त होनेसे एक छोटी-सी दुकान कर ली। परन्तु अपने अध्यवसायसे थोड़े ही दिनोंमें नगरके एक धनी-मानी एवं सर्वप्रकारसे संभ्रान्त व्यक्ति माने जाने लगे। लगभग २०-२२ वर्ष पूर्व परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके प्रचारसे आकृष्ट होकर सपत्नीक उनके पदाश्रित हुए। इन्होंने अपनी सारी सम्पत्तिको श्रीगुरुमनोभीष्ट सेवाके लिये समर्पण कर दिया था। इन्होंने श्रीवेदान्त

समितिके मूल केन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके (१) पुराने मन्दिर (जहाँ अब सेवक खण्ड है) (२) सेवक खण्ड, (३) मठ-प्राङ्गणके चारों ओर विशाल प्राचीर, (४) पाक-गृह, (५) श्रीलगुरुदेवका भजन-कुटीर, (६) विराट् हरि-कीर्त्तन-नाट्य मंदिर, (७) पानी के लिए नल कूप, (८) श्रीजगन्नाथ-बलदेव और सुभद्राजीका विशाल रथ और (९) सर्वोपरि परमाराध्यतम श्रीलगुरुपादपद्मके अप्रकटलीलाविष्कार के पश्चात् उनके श्रीसमाधि-स्थलके ऊपर एक परम दिव्य एवं मूल्यवान समाधि-मंदिरका निर्माण कर चिरस्मरणीय हो गये हैं। इस प्रकार अन्त तक अपनी शुद्धरूपसे उपार्जित सम्पत्तिका एक-एक पैसा श्रीहरिगुरुवैष्णव सेवामें लगाकर एक गृहस्थ भक्तका—एक गुरुसेवकका सर्वोच्च आदर्श स्थापित किया है।

ये प्रतिदिन बड़े सबेरे ही उठते। नियमित-रूप से संध्या-आह्निक, हरिनाम, सद्भक्ति-ग्रन्थ-पाठ, तुलसी-परिक्रमा करते, दोपहरको भोग लगने पर करताल लेकर स्वयं भोगारति कीर्तन आदि करते, शामको नियमितरूपसे भागवत आदि पाठ, तुलसी परिक्रमा, हरिनाम आदि करते। यह क्रम उन्होंने अन्त तक नियमित रूपसे निभाया है। उनका घर सच्चे अर्थोंमें मठ या आश्रम था। सब समय वैष्णव सन्तोंका घरपर आगमन बना रहता। वे और उनकी धर्मपत्नी सर्वदा उनका श्रद्धापूर्वक आदर सत्कार करते।

वे अपनी पत्नी के सहित भारत के आहिमाचल कन्याकुमारीतक एवं द्वारकासे लेकर सुदूर पूर्वके छोटे-बड़े प्रायः सभी धामों, तीर्थों, एवं प्रसिद्ध दर्शनस्थलोंके दर्शन कर चुके थे। लौकिक या सामाजिक हितोंके कार्यों में भी वे सदा-सर्वदा अग्रणी रहते थे। गरीब-असहाय लड़कियोंके विवाह, असहायोंके मातृ-पितृ श्राद्ध-संस्कार, गरीब बालक-बालिकाओंकी शिक्षा, भग्न मन्दिर और तालाबों, कुओं एवं अन्यान्य सार्वजनिक स्थानोंके संस्कार हेतु इनका हाथ सदैव उन्मुक्त रहता था। इस प्रकार लौकिक एवं पारलौकिक समस्त प्रकार के कर्त्तव्योंको पूरा कर अपने पीछे योग्य धर्मपरायणा धर्मपत्नी एवं तीन उपयुक्त पुत्रों छोड़कर समस्त गुरुसेवकोंको विरह-सागरमें निमज्जित कर परलोकगमन कर गये वे। हम दीन-हीनों पर परलोक से भी कृपा करते रहें, यही प्रार्थना है।

(ग) परलोकमें श्रीश्रीमद् अधोक्षजदास बाबाजी महाराज

गत २५ आश्वन, १२ अक्टूबर, मंगलवार को ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित श्रीमद् अधोक्षजदास बाबाजी महाराज दिनके २.२० बजे श्रीहरिस्मरण करते-करते परलोकगमन कर गए। इस समय इनकी आयु लगभग ९० वर्ष की थी।

इनका जन्म पश्चिम बङ्गाल के बसिरहाट थानेके अन्तर्गत वाजितपुर नामक ग्राममें हुआ था। ये पहले गृहस्थाश्रममें रहते हुए कुलगुरुसे मंत्र-ग्रहण कर धर्मयाजन करते थे। बीच-बीच में अपनी पत्नी के साथ परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म द्वारा संचालित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी तीर्थ-परिक्रमाओंमें जाते। वहाँ वे तीर्थों के दर्शन करते हुए श्रद्धापूर्वक हरिकथा श्रवण करते। तदनन्तर

२० वर्ष पूर्व स्त्री-समेत श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित हुए। धीरे-धीरे इनका विषयोंसे वैराग्य हुआ एवं विशुद्ध भजनमें रुचि बढ़ने लगी। संयोगवश कुछ ही दिनों में स्त्री-वियोग होने पर संसार-त्याग कर मठमें रहकर भजन करने लगे। इनकी भजनमें ऐकान्तिक रुचि देखकर परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने पहले इनको दीक्षा-मन्त्र एवं पीछे बाबाजी वेष प्रदान किया। तबसे वे श्रील गुरुदेवके आदेशसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें, श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें एवं अन्यान्य मठोंमें रहकर श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा करते हुए भजन करते थे। वर्तमान समयमें वे श्रीधाम नवद्वीपके समीप ही भगवती-भागीरथीके तटपर स्थित श्रीजावट गौड़ीय मठ, कालनामें भजन करते थे।

ये बड़े ही सरल एवं मृदुभाषी थे। भजनमें बड़ी निष्ठा थी। हम श्रीपाद बाबाजी महाराजके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे सभी अपराधों को क्षमा कर परलोकसे भी शुभ दृष्टि रखें।

—निजस्व संवाददाता

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

सप्तमवृष्टि (पंचम धारा)

प्रेमभक्तिरस—सख्यरस

सख्यरूप स्थायिभाव अपने अनुरूप विभावादिके द्वारा साधु-पुरुषों के हृदयमें आस्वादनीयताको प्राप्त होकर प्रेयोभक्तिरस कहलाता है। प्रेयोभक्तिरसको प्रेमभक्तिरस भी कहते हैं।

श्रीकृष्ण और उनके सखागण इस रसमें आलम्बन विभाव हैं। द्विभुज भगवान् ही विषयरूप आलम्बन होते हैं। ये द्विभुज कृष्ण—सुन्दरवेषवाले, समस्त उत्तम लक्षणों से सुशोभित, बलवानोंमें अग्रगण्य, नाना प्रकारकी अद्भुत भाषाओंके ज्ञाता, वाग्मी, सुपण्डित, अतिशय प्रतिभासम्पन्न, चतुर, दयालु, वीराग्रणी, कुशल, बुद्धिमान, क्षमाशील, लोकप्रिय, समृद्धिशाली, सुखी और श्रेष्ठ इत्यादि विविध सद्गुणोंसे अलंकृत होते हैं। सखागण भी रूप, वेष और गुणमें कृष्णके ही समान, सम्यक् स्वतन्त्र, संकोच भावसे रहित और अत्यन्त विश्वस्त हृदयवाले होते हैं। सखा दो प्रकारके होते हैं—पुरवासी और व्रजवासी। अर्जुन, भीमसेन, द्रौपदी और श्रीदामा ब्राह्मण आदि पुरसम्बन्धीय सखा हैं। उनमें अर्जुन सर्वश्रेष्ठ हैं। तनिक देर भी कृष्णको न देखने पर घबड़ा जानेवाले सर्वदा कृष्णके साथ विहार करनेवाले, कृष्णही जिनके जीवन हैं, ऐसे सखागण कृष्णके व्रजवासी सखा हैं। अतः कृष्णके समस्त सखाओंमें व्रजवासी सखागण ही प्रधान हैं।

व्रजवासी सखा भी चार प्रकार के होते हैं—सुहृद, सखा, प्रिय सखा और प्रियनर्म सखा। ये चारों प्रकारके सखागण व्रजमें

श्रीकृष्ण-सेवा करते हैं। सुहृद्-सखाओंका सख्य वात्सल्यमिश्रित होता है। वे आयुमें कृष्णसे कुछ बड़े और अस्त्रधारण कर दुष्टोंसे कृष्णकी रक्षामें सदा तत्पर होते हैं। सुभद्र, मण्डलीभद्र, भद्रवर्द्धन, गोभट, यज्ञ, इन्द्रभट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, महागुण, विजय और बलभद्र आदि कृष्णके सुहृद् कहलाते हैं।

आयुमें कृष्णसे छोटे, दास्यमिश्र सख्ययुक्त विशाल, वृषभ, ओजस्वी, देवप्रस्थ, वरूथप, अरन्द, कुसुमापीड़, मणिबन्ध, और करन्दम आदि कृष्णके सखा हैं। ये कृष्ण-सेवामें अतिशय अनुरागी होते हैं। इन सखाओं में देवप्रस्थको श्रेष्ठ माना गया है।

बराबरकी आयुवाले शुद्ध सख्य-भावका अवलम्बन करनेवाले श्रीदाम, सुदाम, दाम, वसुदाम, किङ्किणी, स्तोककृष्ण, अंशु, भद्रसेन, विलासी, पुण्डरीक, विटङ्क और कलविङ्क आदि कृष्णके प्रियसखा हैं। ये विविध प्रकारकी क्रीड़ाओंद्वारा, मल्लयुद्ध और दण्ड-युद्ध द्वारा कृष्णको सदा आह्लादित करते रहते हैं। इन प्रिय सखाओंमें श्रीदाम सबसे मुख्य माने जाते हैं।

पूर्वोक्त तीनों प्रकारके वयस्कोंसे भी अधिक श्रेष्ठ, अत्यन्त गोपनीय भावोंसे युक्त गोपनीय कार्योंमें निरत कृष्णके वयस्योंको प्रियनर्म सखा कहते हैं। सुबल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, और उज्ज्वल आदि प्रियनर्म सखा हैं। इनमें सुबल और उज्ज्वल प्रमुख माने जाते हैं। उज्ज्वल तो सर्वाधिक परिहास चतुर हैं। उक्त सखागण नित्यप्रिय, सुरचर और साधक-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। इनमें से भी कुछ स्वभावतः स्थिरमति होने से मन्त्रीके समान कृष्णकी सेवा करते हैं, कुछ चपल स्वभाववाले सखा कृष्णको विदूषकके समान हँसाते रहते हैं, कुछ सरल प्रकृतिवाले सरलताद्वारा कृष्णकी सेवा करते हैं, कुछ वाम्य प्रकृतिवाले उलटे-सीधे उपायोंसे उनको आश्चर्यान्वित करते रहते हैं, कुछ प्रगल्भ स्वभाववाले बालक वाद-विवाद द्वारा उनको आनन्दित करते हैं और कोई-कोई सौम्य प्रकृतिवाले सहज-सरल और मधुर वचनोंसे उनको प्रसन्न करते हैं। इस प्रकार नाना-प्रकारके सभी सखा अपने-अपने स्वाभाविक मधुर और पवित्र बन्धुत्वके द्वारा नाना प्रकारके कार्योंकी विचित्रता सम्पादन करते हैं।

ख्यरसके उद्दीपन—वयस, रूप, शृंग, वेणु, शङ्ख, विनोद, हँसी-मजाक, पराक्रमके गुण तथा प्रियजन एवं राजा, देवता, अवतार आदिकी चेष्टाओंका अनुकरण आदि इस रसके उद्दीपन-विभाव हैं। सख्यरसमें कौमार, पौगण्ड और कैशोर, ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। इनमेंसे गोष्ठमें कौमार और पौगण्ड तथा पुर और गोष्ठमें कैशोर-अवस्था लक्षित होती है। वात्सल्यके लिए कौमारावस्था उपयुक्त है। पौगण्डावस्था तीन प्रकारकी होती है—आद्य, मध्य और शेष। मध्य-पौगण्डमें श्रीहरिका सौन्दर्य दिव्यातिदिव्य होता है। कैशोरके अग्रभागमें माधुर्यकी अद्भुत रूपता देदीप्यमान होती है। ये सब उद्दीपन-विभाव हैं।

कुश्ती, गेन्द खेलना, द्यूतक्रीड़ा, वाद्य तथा सवारीकी क्रीड़ा एवं दण्डोंसे परस्पर लड़ाई आदिके द्वारा कृष्ण-तोषण, पलङ्ग, आसन और झूलेपर साथ-साथ सोना, बैठना और झूलना सुन्दर एवं नाना प्रकारका परिहास-करना, जलाशयोंमें विहार करना तथा कृष्णके साथ नाचना और गाना आदि ये सब इस रसमें सभी प्रकारके सखाओंके साधारण कार्य

हैं। कर्तव्य और अकर्तव्यका उपदेश, हितकारी कार्योंमें प्रवृत्त करना और सभी कार्योंमें अग्रसर रहना, ये सुहृदोंके कार्य हैं।
कृष्णके मुखमें पान देना, तिलक रचना, चंदन-लेपन तथा कपोलों आदिपर पत्रांकुर रचना आदि सखाओंके कर्म हैं। युद्धमें कृष्णको पराजित करना, वस्त्र पकड़कर खींचना, विनोदमें कृष्णके हाथोंसे पुष्प आदिको छीन लेना, कृष्णके द्वारा अलंकृत होना तथा हाथापाईका का प्रसङ्ग आ जाना, ये प्रियसखाओंके कार्य हैं। व्रज-किशोरियोंके पास दूत बनकर जाना, उनके प्रणयके प्रति अनुमोदन और किशोरियोंके साथ कृष्णका प्रणय-कलह होने पर कृष्णका पक्ष समर्थन करना, और व्रज-किशोरियोंकी अनुपस्थितिमें यूथेश्वरीके पक्षको समर्थन करनेकी चतुरता तथा कृष्णके साथ कानाफूसी करना आदि प्रियतम सखाओंके कार्य हैं। वन्यपुष्पों और रत्नालङ्कारोंसे कृष्णको सजाना, उनके सामने नाचना-गाना-बजाना, गौओंकी संभाल करना, कृष्णके अंगोंका दबाना, माला गूँथना और पंखा करना—ये दासोंके समान वयस्योंमें भी रहनेवाली क्रियाएँ हैं।

उग्रता, भय और आलस्यको छोड़कर शेष सारे व्यभिचारी भाव इस रसमें लक्षित होते हैं। उनमेंसे अयोगमें मद, हर्ष, गर्व, निद्रा और धृतिको छोड़कर सब व्यभिचारी भाव और योगमें मृति, वलम, व्याधि, स्मृति तथा दैन्यके अतिरिक्त शेष सारे व्यभिचारी भाव होते हैं।

इस रसमें भय एवं गौरवरहित-विश्रम्भ—विश्वासमयी रति ही स्थायीभाव है। किसी प्रकारके संकोचसे रहित जो प्रगाढ़ विश्वास होता है, उसे ही विश्रम्भ कहते हैं। उसीको संभ्रमशून्य विश्वास कहते हैं।

यह सख्यरति क्रमशः पुष्ठ होकर प्रणय, प्रेम, स्नेह, और रागावस्था तकको पहुँच जाती है।

संभ्रम आदिका प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर भी संभ्रमगंधरहित जो रति होती है, उसे प्रणय कहते हैं।

प्रकट-लीलाके अनुसार इस रसमें विरह का वर्णन रहने पर भी वास्तवमें व्रजवासियोंका कृष्णसे कभी भी वियोग नहीं होता है।

कृष्णऔर कृष्णके सखाओं, दोनोंके चित्तमें एकजातीय माधुर्यको प्रस्तुत करनेवाला यह प्रेयोभक्तिरस चित्तमें किसी अनिर्वचनीय आनन्दको उत्पन्न करता है। प्रीत (दस्य) और वत्सल रसमें श्रीकृष्ण और श्रीकृष्ण-भक्त दोनों के स्नेहकी विभिन्नता रहती है अर्थात् एकजातीय नहीं होती है, किन्तु सख्यरसमें वह एकजातीय होती है। इसलिए सभी रसोंमें प्रेयोभक्तिरस अर्थात् सख्यरस ही प्रियतर माना जाता है और सख्यभावसे परिपूर्ण महात्मागण उसका अनुभव करते हैं।

षष्ठधारा (वत्सल-भक्तिरस)

विभावादिके द्वारा पुष्ट होनेपर वात्सल्य रति स्थायीभावको पण्डितजन वत्सल-भक्तिरस कहते हैं। कृष्ण और उनके गुरुजन इस रसके आलम्बन हैं।

श्यामल देह, सुन्दरता, समस्त शुभलक्षणोंसे मुक्त, मृदुल स्वभाव, मधुर भाषी, सरल, लज्जाशील, विनयी, पूजनीय जनोंका आदर करना और दाता आदि गुरुओंसे युक्त कृष्ण

इस रसमें विभाव होते हैं। पुत्र-आदिके रूपमें ईश्वर-प्रभावसे रहित, अनुग्राह्य (लालन-पालनयोग्य) भाव धारण करके विभावताको प्राप्त होते हैं।

अपनेको कृष्णकी अपेक्षा बड़ा समझनेके कारण, शिक्षा देनेवाले होनेके कारण अथवा लालन-पालन करनेवाले होनेके नाते गुरुजन इस रसमें आलम्बन-विभाव माने जाते हैं। व्रजरानी यशोदा, व्रजेश्वर नन्द महाराज, रोहिणी एवं गोपपत्नियाँ, जिनके बालकोंको ब्रह्माने चुरा लिया था, देवकी, उनकी सपत्नियाँ, कुन्ती, वसुदेव और सान्दीपनी मुनि आदि अन्यान्य व्यक्ति श्रीकृष्णके गुरुजन हैं। ये पूर्व-पूर्वकमसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। व्रजेश्वरी और नन्द महाराज इनमें सर्वप्रधान हैं।

कौमार आदि आयु, रूप, वेष, बालचापल्य, मधुर वाक्य, मुस्काना और क्रीड़ा आदि वात्सल्य रसके उद्दीपन हैं। इसमें प्रथम, मध्य और अन्तिम भेदसे कौमार तीन प्रकारका होता है। प्रथम कौमारावस्थामें बार-बार पैर चलाना, तनिक-तनिक बेरमें रोना और हँसना, अपने पैरका अँगूठा चूसना और चित्त लेटे रहना आदि क्रियाएँ होती हैं। इस अवस्थामें बघनखा, राखका तिलक, काजल, कमरमें काली रेशमी डोरी और हाथमें काला सूत आदि आभूषण होते हैं।

मध्य कौमारमें आँखोंतक बाल लटकना, नङ्गा रहना, छिपे हुए कान, सुन्दर बोली और घुटनेके बल चलना देखा जाता है। नाकके अग्र भागपर मोती धारण करना, हाथमें मक्खन और कमर आदिमें किंकिणीका बँधा रहना इत्यादि इस अवस्थामें अलंकार हैं।

अन्तिम कौमारमें कमर कुछ पतली, छाती कुछ चौड़ी हो जाती है तथा सिर घुँघराले बालोंसे भर जाता है। व्रजके आसपासके वनमें बछड़ोंको चराना, सखाओंके साथ क्रीड़ा करना, छोटी वेणु और शृंग आदिका बजना इत्यादि व्यापार इस अवस्थामें होते हैं।

अनुभाव—सिरका सूँघना, शरीरपर हाथ फेरना, आशिर्वाद और आज्ञा देना, लालन-पालन करना तथा हितोपदेश करना आदि वात्सल्यरस-अनुभाव हैं। इसमें चुम्बन, आलिंगन, नाम ले लेकर पुकारना और उलाहना देना आदि मित्रोंके साथ साधारण व्यवहार होते हैं।

स्तनोंसे दूध बहना और स्तंभादि नौ सात्त्विक भाव इस वात्सल्यमें होते हैं।

अपस्मार सहित प्रीतिभक्तिरसमें कहे हुए व्यभिचारी भाव इसमें भी व्यभिचारी भाव हैं।

अनुकम्पा करनेवाले गुरुजनोंकी अनुकम्पनीयके प्रति भय आदिसे रहित रतिको ही इसमें वात्सल्य नामक स्थायिभाव कहते हैं। यशोदा आदिकी वात्सल्यरति स्वभावतः ही प्रौढ़ा है और वह प्रेमके समान, स्नेहके समान और कभी रागके समान प्रतीत होता है।

वियोगके समयमें अनेकों व्यभिचारी भावोंकी संभावना रहने पर भी इसमें चिन्ता, विषाद, निर्वेद, जड़ता, दैन्य, उन्माद और मोह आदि कुछ व्यभिचारी भाव अत्यन्त उग्रताको प्राप्त होते हैं।

पण्डितजन चमत्कृत होकर वात्सल्यको प्रधानरस स्वीकार करते हैं। इस रसमें वत्सलता—स्थायीभाव तथा पुत्रादि—आलम्बन हैं।

कृष्णके प्रति रतिकी प्रतीति न होनेपर प्रीतरसकी पुष्टि नहीं हो पाती है और प्रेयोभक्तिरसका भी तिरोभाव हो जाता है।

परन्तु वात्सल्यरसमें ऐसा होनेपर भी कोई हानि नहीं होती। यही वात्सल्यरसका उत्कर्ष है। ये तीनों रस अत्यन्त अद्भुत हैं; तथापि किसी-किसी स्थल पर रस-मिश्रण भी लक्षित होता है। बलदेवकी सख्य प्रीति और वात्सल्यरस मिश्रित है। युधिष्ठिर का वात्सल्य दास्य और सख्यसे मिश्रित है। उग्रसेनका दास्य-वात्सल्य मिश्रित है। वृद्ध अहीर आदिका वात्सल्य सख्यसे मिश्रित है। नकुल, सहदेव तथा नारदादिका सख्य दास्यमिश्रित है। शिव, गरुड़ और उद्धवादिका दास्य सख्यमिश्रित है। अनिरुद्ध आदि नातियोंकी प्रीति भी इसी प्रकार सख्य-भावसे मिश्रित मानी जाती है। दास्यरसाश्रित व्यक्तिके लिये दास्यरस, सख्यरसाश्रित व्यक्तिके लिए सख्यरस और वात्सल्यरसाश्रित व्यक्तिके लिए वात्सल्यरस सर्वोत्तम होने पर भी यह आगे दिखलाया जायगा कि मधुर रस ही सर्वोत्तम है और उसीकी सहायताके लिए उक्त तीन रस कार्य करते हैं।

प्रचार-प्रसंग

श्रीश्रीमद् मध्वाचार्यजीकी आविर्भाव तिथि-पूजा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल-मठ एवं सारे शाखा-मठोंमें १२ आश्विन, २६ सितम्बर, बुधवार, गौर-दशमीको श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके पूर्वाचार्य श्रीमद् आनन्दतीर्थ मध्वाचार्यकी आविर्भाव-तिथिकी पूजा बड़े समारोहपूर्वक की गई है। उक्त दिवस प्रातःकाल सभी मठोंमें ही वैष्णव-महिमासूचक-महाजन पदावलियोंके कीर्त्तनके पश्चात् वैष्णवाचार्य श्रीमद् मध्वमुनिके अलौकिक जीवन-चरित्रका पाठ विभिन्न ग्रन्थोंसे किया गया। मध्याह्नमें श्रीश्रीगुरु गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरधारी श्रीश्रीराधाविनोद विहारीजीका भोग-राग विशेष रूपसे सम्पन्न हुआ। संध्यारतिके पश्चात् विशेष धर्मसभामें उनके जीवन-चरित्र, उपदेश एवं दार्शनिक विचारोंके सम्बन्धमें विभिन्न वक्ताओंने प्रकाश डाला। विशेष रूपसे वक्ताओंने इस विषयको स्पष्ट किया कि चैतन्य-महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द-प्रभु एवं उनके अनुगत जनोंने श्रीमध्व-सम्प्रदायको ही क्यों अंगीकार किया। सभाके प्रारम्भ एवं अन्तमें वैष्णव-पदावलियोंका कीर्त्तन किया।

कतिपय पूज्य-तिथियाँ

पूर्व-वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी १४ आश्विन, शुक्रवार, शुक्ला एकादशीको श्रील रघुनाथदास गोस्वामी एवं श्रील कृष्णदास गोस्वामीजी की तिरोभाव तिथि, २ कार्त्तिक शुक्ला प्रतिपदाको श्रील वृन्दावनदास ठाकुरकी तिरोभाव-तिथि तथा श्रीरसिकानन्द प्रभुकी आविर्भाव-तिथि एवं १२ कार्त्तिक शनिवार, शुक्ला एकादशीको श्रीश्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव तिथि विशेष श्रद्धापूर्वक मनाई गई है। सर्वत्र ही उक्त तिथियोंको उन-उन गोस्वामियों, आचार्यों एवं महात्माओंके अप्राकृत जीवन-चरित्र, उपदेशों एवं वैशिष्ट्योंके विषयमें विशेष रूपसे आलोचना, कीर्त्तन, भाषण एवं श्रीभगवत् प्रसाद वितरण आदि हुए हैं।

श्रीश्रीदामोदर-व्रत एवं श्रीअन्नकूट-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी समितिके अन्तर्गत सभी मठोंमें चातुर्मास्यव्रत एवं उसके अन्तर्गत श्रीदामोदर-व्रत अथवा श्रीकार्तिक-व्रत या श्रीऊर्ज-व्रतकी नियम-सेवाका अनुष्ठान विधिवत् सम्पन्न हुआ। गत १७ आश्विन, ४ अक्टूबर, सोमवार, पूर्णिमासे आरम्भ कर १५ कार्तिक, २ नवम्बर, मंगलवार पूर्णिमा तक एक माह श्रीदामोदर-व्रतकी नियम-सेवाका पालन किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीयमठमें उक्त समय समितिके वर्तमान सभापति आचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त ऊर्द्धवमंथी महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदांत पर्यटक महाराज, २०-२५ ब्रह्मचारीवृन्द एवं व्रतपालनकारी बंगालसे कुछ गृहस्थ पुरुषों एवं महिलाओंकी उपस्थितिसे यह अनुष्ठान बड़े ही सुचारु ढंगसे सम्पन्न हुआ है।

पूज्यपाद श्रीश्रीआचार्यदेव एवं पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने एक-एक दिनके अन्तरसे प्रातःकालमें क्रमशः श्रीदामोदराष्टकम्, श्रीशिक्षाष्टकम्, श्रीउपदेशामृतम् और मनःशिक्षाका, पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने प्रतिदिन अपराह्नमें ३ बजेसे ४॥ बजे तक श्रीगोपालचम्पूका, तथा संध्यारति एवं कीर्तनके पश्चात् रात्रिमें पूज्यपाद श्रीमद्भक्ति वेदान्त ऊर्द्धवमन्थी महाराजने प्रतिदिन श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धका पाठ-प्रवचन किये। प्रतिदिन शाम-सवेरे श्रीगुर्वष्टक, श्रीगुरुपरम्परा, वैष्णववंदना, पंचतत्त्व, श्रीराधा-महिमासूचक महाजन पदावली एवं महामंत्रका कीर्तन; नियमित रूपसे श्री तुलसीके समीप, मन्दिरमें एवं आकाशमें घृत-प्रदीप जलाया जाता, विशेष विधिसे प्रतिदिन मङ्गलादि आरतियाँ, अर्चन-पूजन, श्रीविग्रहोंके शृंगार, भोगराग आदि सम्पन्न होते थे।

उक्त व्रतके अन्तर्गत २ कार्तिक, बुधवार शुक्ला प्रतिपदाको समितिके अन्तर्गत सभी मठोंमें विशेषकर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका श्रीश्रीअन्नकूट महोत्सव बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है।

उक्त दिवस पूर्वाह्नमें ही श्रीगिरिराज-गोवर्धनका विधिवत् अर्चन-पूजन एवं श्रीश्रीगोवर्धनधारी गोपालजीका एवं श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीका विशेष रूपसे अभिषेक और भोगराग सम्पन्न हुआ। दोपहरके समय लगभग ५०० श्रद्धालुओंको अन्नकूटका महाप्रसाद दिया गया।

इस उत्सवके लिए श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीमुरलीमोहन ब्रह्मचारी, श्रीनारायणचन्द्र दासाधिकारी, श्रीकानाईदास ब्रह्मचारी, श्रीभक्त्यांघ्रिरेणु व्रजवासी, श्रीशेषशायी ब्रह्मचारी, श्रीसुबलसुख ब्रह्मचारी, श्रीकालाचांद ब्रह्मचारी और श्रीमहामहेश्वर ब्रह्मचारी तथा श्रीरामेश्वर सक्सेनाजी आदिकी सेवा चेष्टाएँ अत्यन्त प्रशंसनीय थीं।

—निजस्व संवाददाता

सम्पादकीय—

बँगला देश

पश्चिम पाकिस्तानी नादिरशाहियों एवं नर-पिशाचोंने बँगला देशके निरीह नागरिकों विशेषतः हिन्दुओंके ऊपर जो पाशविक अत्याचार किया है और उनको वहाँसे भारतमें आने के लिए विवश कर दिया है, उससे किसी भी सहृदय व्यक्तिके घृणा एवं क्रोधसे रोंगटे खड़े हो जाना स्वाभाविक है। नादिरशाह, चँगेजखाँ, हिटलर एवं अन्यान्य आततायियोंके द्वारा सामूहिक कत्ले-आम, लूट-मारों, बलात्कारकी घटनाएँ, जबरदस्ती धर्मपरिवर्तन आदि अत्याचार किये गये थे; परन्तु वर्तमान समयमें पूर्वी बंगालमें जिस तरह व्यापक एवं नियोजित रूपसे १० लाखसे भी अधिक बे गुनाहोंका कत्ले-आम हुआ है, नगरके-नगर, ग्रामके-ग्राम चिह्न-शून्य कर दिये गये हैं, अल्पसंख्यकोंकी संस्कृतिका पूर्णरूपसे ध्वंस कर दिया गया है, उनकी सम्पत्तिको लूट लिया गया है, उनकी स्त्रियोंको विशेषतः १२ से २५ वर्ष तककी किशोरियों एवं युवतियोंको सामूहिक रूपसे नग्न कर आम रास्तोंपर कुत्तों एवं शूकरोंकी भाँति बलात्कार करते-करते मार डाला गया है, बच्चों, बालकों तकको गोलियोंसे भून दिया गया है, ऐसे घृणित नृशंस-काण्डका वर्णन अतीतके करोड़ों वर्षोंके किसी भी इतिहासमें नहीं मिलता।

अब पाक " नहीं, नापाकके पापोंके घड़े भर चुके हैं। विदेशोंमें भी उनका भण्डाभोड़ हो गया है। आज वे स्वयं अपने विनाश-कगार पर खड़े हैं। मुक्तिवाहिनीके रणबाँकुरों उनके छक्के छुड़ा रहे हैं। आज वे नर-पिशाच बंगला देशसे किसी प्रकार प्राण बचाकर भाग निकलनेको तैयार हैं। भारत भी अपनी सीमाओं पर सजग है। हमारे वीर अतीत की भाँति इस समय भी सीमा झड़पोंमें प्रचण्ड वीरताका जौहर दिखलाकर भारतीय जनताका मनोबल उन्नत रख रहे हैं। इस समय हमें देशके भीतर पंचमार्गी, देशद्रोहियों एवं पाकगुप्तचरोंसे सावधान रहकर, देशका उत्पादन स्तर ऊँचा रखकर साम्प्रदायिक एकताको बनाये रखकर एवं यथासाध्य आर्थिक सहायता देकर सरकार एवं सीमाके वीर-प्रहरियोंका मनोबल ऊँचा रखे—समयकी यही पुकार है। अधार्मिक अत्याचारियोंका पराजय अवश्यंभावी है।

कलियुगी अवतारोंका उत्पात

भारत सदा ही से एक पैदावार देश है। प्राचीनकालसे ही यहाँकी भूमिमें खाद्य-शस्य पदार्थोंके अतिरिक्त हीरा, सोना आदि खनिज-पदार्थ भी प्रचुर परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। यही नहीं, आजकल यहाँ अवतारोंकी पैदावार फसलोंसे भी अधिक बढ़ जानेकी संभावना है। सुनते हैं कि दिल्लीके एक तथाकथित बालयोगेश्वर, उनके भाई, माँ एवं परिवारोंके प्रायः सभी लोग अपने-अपनेको राम-कृष्ण, कल्कि, दुर्गा आदिके अवतार घोषित कर वर्षोंसे अबोध-मूर्ख जनताको ठगते आ रहे हैं। यही नहीं, उनकी गतिविधियाँ भी देशके लिए अवांछित

सिद्ध हो रही हैं। उन्होंने उनकी भगवत्ताका भण्डाफोड़ करनेवाले नवभारत टाइम्सके कार्यालय पर हमला करनेकी धृष्टता भी की है।

समय रहते ऐसे पाखण्डियोंको कठोर दण्ड देनेकी आवश्यकता है। यही नहीं, इस देशमें प्रत्येक जीव ही शिव है, आत्मा ही परमात्मा है, प्रत्येक मनुष्य या प्राणी ही ब्रह्म-समान है, आदि भ्रान्त धारणाएँ जीवको अधोपातित कर रही हैं। 'अहं ब्रह्मास्मि', तत्त्वमसि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' आदि श्रुति-मन्त्रोंका कदर्थ कर जीव स्वयं भगवान बनने जाकर नरकगामी होता है। आजकल सभी ब्रह्म या परमात्मा होकर जगत्-जञ्जालकी वृद्धि कर रहे है। पुत्र भी ब्रह्म, पिता भी ब्रह्म; पति भी ब्रह्म, स्त्री भी ब्रह्म; शिक्षक भी ब्रह्म, छात्र भी ब्रह्म; मजदूर भी ब्रह्म, उद्योगपति भी ब्रह्म; चोर भी ब्रह्म, साधु भी ब्रह्म; पाखण्डी भी ब्रह्म, सज्जन भी ब्रह्म—सभी ब्रह्मपरब्रह्म हैं छोटे-बड़ेका, अधीनस्थ-अधिनायक, भक्त और भगवान, सेव्य और सेवक आदिकी मर्यादा टूट जानेसे देश, समाज, धर्म, संस्कृति एवं व्यक्ति-विशेषका जीवन धारण करना भी कठिन हो गया है। ऐसी दशामें भगवान ही पार लगावें। सभी व्यक्तियोंको इन पाखण्डियोंसे सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

नवीन-ग्रंथ

श्रीचैतन्य महाप्रभु

के

स्वयंभगवत्ता-प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय-प्रमाण

संग्रहकर्त्ता—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज।

संपादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज।

श्री चैतन्य महाप्रभुकी स्वयं भगवत्ता सम्बन्धी वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत और पांचरात्र आदि विभिन्न शास्त्रोंके प्रमाणोंका अभूतपूर्ण संग्रह। इसमें संस्कृतके पद्यों एवं गद्यों का सुन्दर हिन्दी अनुवाद भी साथ-साथ दिया गया है।

सोलह पेजी २०×३० आकारके ७६ पृष्ठोंकी पुस्तक। उत्तम कागजपर सुन्दर छपाई। मूल्य केवल १) रुपया। श्रद्धालु पाठक इस ग्रन्थरत्नका अवश्य ही संग्रह करें।

मँगाने का पता—

श्रीभागवत पत्रिका कार्यालय,
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो०—मथुरा (उ० प्र०)